सन् 1987 से निरंतर प्रकाशित

पर्यावरण डाइजेस्ट

पर्यावरण पर पहली राष्ट्रीय हिन्दी मासिक

ISSN 2229-7529
वर्ष 39, अंक 10
अक्टूबर 2025
466



संघ : पंच परिवर्तन से समाज परिवर्तन

ISSN 2229-7529

पर्यावरण पर पहली राष्ट्रीय हिन्दी मासिक

प्रकाशन का 39 वां वर्ष

पर्यावरण डाइजेस्ट

ईमेल - paryavaran.digest@gmail.com,kspurohitrtm@gmail.com

समन्वय प्रकाशन

19 पत्रकार कॉलोनी, रतलाम 457001 ☎: (07412) 403640

सम्पादक : डॉ. खुशालसिंह पुरोहित

संयुक्त संपादक : कुमार सिद्धार्थ, श्रीमती अलका पुरोहित

* पर्यावरण डाइजेस्ट एक अव्यवसायिक प्रकाशन * सभी पद मानसेवी

वर्ष 39, अंक 10 सहयोग : सप्रेस, स्त्रोत वार्षिक सदस्यता शुल्क रु. 200

अक्टूबर 2025 संस्थागत रु. 400

यह अंक रु. 15 दसवर्षीय सदस्यता व्यक्तिगत रु. 1750, संस्थागत रु. 3500

सदस्यता शुल्क राशि बैंक डाफ्ट/धनादेश द्वारा पर्यावरण डाइजेस्ट के नाम भेजें या बैंक ऑफ बड़ौदा, स्टेशन रोड़, रतलाम के खाता क्रमांक 05040200000504 में जमा कर सकते है इसका IFSC CODE - BARB0RATLAM है।

स्वत्वाधिकारी डॉ. खुशालसिंह पुरोहित द्वारा 19 पत्रकार कॉलोनी, रतलाम से प्रकाशित एवं स्टेण्डर्ड स्टेशनरी मार्ट, 78 रानीपुरा, इन्दौर से मुद्रित।

डी.टी.पी. कार्य : विनिशा क्रियेशन, रतलाम

त्योहारों की मिठास में मिलावट से बचे

दिवाली का त्योहार रोशनी और मिठास का पर्व है, जो हर घर को खुशियों से भर देता है। बाजारों में रंग-बिरंगी मिठाइयों की दुकानें सजने लगती हैं, रसगुल्ले, गुलाब जामुन, रसमलाई की मलाई, पेडे, मिल्क केक की मिठास और संदेश की नरमी हर किसी को ललचाती है। लेकिन इस चमक-दमक के पीछे एक कड़वा सच भी छिपा रहता है।

मिठाइयों को सेहत के लिए खतरा बना देता है। भारत, जो दुनिया का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश है, फिर भी दूध और खोये (मावे) की कमी से जूझता है। सरकारी आंकड़ों की रोशनी में इस मिलावट के अंधेरे को समझें और जानें कि कैसे हम अपनी सेहत और स्वाद, दोनों की रक्षा कर सकते हैं।

भारत की दूध की कहानी गर्व करने लायक है। 20वीं राष्ट्रीय पशु जनगणना (2019) के अनुसार, देश में 303.76 मिलियन (30.376 करोड़) मवेशी और कुल 535.78 मिलियन (53.578 करोड़) पशुधन हैं। इनमें से दूध देने योग्य गाय और भैंसों की संख्या करीब 125.75 मिलियन (12.575 करोड़) है। साल 2023-24 में भारत ने 230.58 मिलियन टन दूध का उत्पादन किया, यानी प्रतिदिन औसतन 65.65 लाख किलोग्राम। लेकिन यह विशाल उत्पादन भी त्योहारी सीजन' की मांग को पूरा नहीं कर पाता। उद्योगों में ही सालाना 125.5 मिलियन टन दूध की खपत होती है, जो दैनिक 34.38 लाख किलोग्राम के बराबर है।

दिवाली जैसे त्योहारों पर मिठाइयों, प्रसाद और मेहमाननवाजी के चलते दूध की मांग 20-30% तक उछाल, मारती है। उदाहरण के लिए, इंदौर अकेले शहर में ही त्योहारों से पहले दूध की मांग में 1 लाख लीटर की वृद्धि हो जाती है। दुग्ध संघों को आपूर्ति बढ़ाने के लिए अतिरिक्त मेहनत करनी पड़ती है, लेकिन सप्लाई चेन की सीमाएं और छोटे किसानों की उत्पादन क्षमता की कमी इस अंतर को और गहरा देती है। नतीजा ? खोया और दूध की कमी को पूरा करने के लिए मिलावटखोर सक्रिय हो जाते हैं।

दीपावली के विशेष अवसर पर रसगुल्ला, रसमलाई, पेड़ा, चमचम और संदेश. खोआ जलेबी जैसी मिठाइयां, जो दूध और खोये की आत्मा हैं, सबसे ज्यादा मिलावट की शिकार होती हैं।

तुषार पुरोहित, रतलाम (म.प्र.)

अपनी बात



डॉ. खुशालसिंह पुरोहित

बादलों तक पहुँच गए है कीटनाशक

प्लास्टिक और माइक्रोप्लास्टिक की तरह कीटनाशक मानव सभ्यता के लिए बड़ा खतरा बनता जा रहा है। हमारे वायुमंडल और खानपान में कीटनाशकों की मौजूदगी के सुबूत तो पहले ही मिल चुके हैं, लेकिन नए अध्ययन में बादलों में भी इनकी मौजूदगी ने खतरनाक संकेत देने शुरू कर दिए हैं। अध्ययन में पाया गया कि बादलों में मौजूद ये कीटनाशक वर्षा की बूंदों के साथ हर चीज पर बरस रहे हैं और उसे प्रदूषित कर रहे हैं।

फ्रांस के क्लेरमोंट औवर्गे विश्वविद्यालय की रसायनशास्त्री एंजेलिका बियान्को के नेतृत्व में फ्रांस और इटली के विज्ञानी दलों ने 2023 से 2024 के बीच विभिन्न मौसमों में बादलों और वर्षा के पानी के नमूनों का अध्ययन किया। वर्षा के पानी में 32 तरह के कीटनाशक पाए गए। खास बात ये है कि इन कीटनाशकों का प्रयोग यूरोप में पिछले एक दशक से अधिक समय से प्रतिबंधित है।

श्री बियान्को ने बताया कि एक तिहाई नमूनों में कीटनाशकों की मात्रा पीने के पानी के लिए निर्धारित मानक स्तर से भी अधिक पाई गई। अध्ययन के आधार पर अनुमान है कि निचले और मध्यम ऊंचाई वाले बादलों में कीटनाशकों की मात्रा छह से लेकर 139 टन तक हो सकती है।

श्री बियान्को ने बताया कि बादल केमिकल रिएक्टर का काम करते हैं। सूर्य की किरणों से मिलकर बादलों में फोटोकेमिकल प्रतिक्रिया होती है, जिससे कीटनाशकों का स्वरूप बदल जाता है। उन्होंने बताया कि हमारे अध्ययन में कीटनाशकों जो परिवर्तित स्वरूप मिला, वो इनके मूल रूप से काफी अलग था। इससे ये भी पता चला कि वायुमंडल में कीटनाशकों का प्रभाव घटता भी है। बियान्को ने कहा कि इस मुद्दे पर और अधिक शोध की जरूरत है, ताकि नई जानकारियां सामने आ सकें और साथ ही कीटनाशकों का प्रयोग कम से कम करने के लिए भी जागरूकता बढ़ाई जा सके।

श्री बियान्को ने बताया दो मौसमों में विभिन्न जगहों से वर्षा के पानी के नमूने

इकट्ठे किए गए। फ्रांस में पुए डे डोम वेधशाला में बादलों के नमूने एकत्र किए गए। ये बादल 10 से 50 माइक्रोमीटर आकार की बूंदों से बनते हैं। इन बादलों को बूगी नाम की मशीन के जरिये एकत्र किया गया। बादलों के नमूनों को अधिकतम दो घंटे तक सहेजा जा सकता था। तमाम अध्ययनों के बाद हमने अनुमान लगाया कि फ्रांस के ऊपर मंडरानेवाले बादलों में 6.4 से लेकर 139 टन तक कीटनाशक हो सकते हैं। बादलों में अरबों टन पानी होता है, जो धरती पर हर जगह समान रूप से बरसता है।

हाल में शोधकर्ता लुडोविक मेयर और उनके सहयोगियों ने यूरोप में 29 स्थानों पर वायुमंडलीय एरोसोल (हवा में मौजूद छोटे–छोटे कण) में कीटनाशकों की मौजूदगी के बारे में पता लगाया था। इसमें से कई क्षोभमंडल (ट्रोपोस्फेयर) में भी पाए गए, जो पृथ्वी के वायुमंडल की पहली परत है। ये परत धरती से एक से दो किलोमीटर की ऊंचाई से शुरू होती है। 1990 के दशक में भी वर्षा में कीटनाशकों की मौजूदगी का अध्ययन किया गया था।

बादलों के माध्यम से प्रदूषण का संचरण होता है, जिसमें भारी धातुएं और कीटनाशक जैसे जहरीले पदार्थ हवा में मिलकर बादलों में चले जाते हैं और दूर–दूर तक फैल जाते हैं, जिससे हवा की गुणवत्ता बिगड़ती है और मानव स्वास्थ्य व पर्यावरण को नुकसान पहुँचता है। इसके अलावा, वायु में मौजूद प्रदूषक कण बादलों के बनने और वर्षा कराने की क्षमता को भी प्रभावित करते हैं, जिससे जलवायु प्रणाली में बदलाव आ सकता है।

बादलों द्वारा प्रदूषण के प्रकार और प्रभाव–

1. भारी धातुएं: हिमालयी बादल जहरीली भारी धातुओं जैसे कैडमियम, क्रोमियम, तांबा और जस्ता ले जाते हैं, जो प्रदूषण वाले निचले क्षेत्रों से बादलों में पहुँचते हैं। ये धातुएं सांस लेने, त्वचा के संपर्क में आने और दूषित पानी पीने से इंसानों के शरीर में प्रवेश कर सकती हैं।

2. कीटनाशक: बादल एक केमिकल रिएक्टर की तरह काम करते हैं, जहाँ सूरज की किरणों से फोटोकेमिकल प्रतिक्रियाएं होती हैं, जिससे कीटनाशकों का स्वरूप बदल जाता है और वे वायुमंडल में फैलते हैं।

3. प्रदूषक कण (एयरोसोल) : इंसानी गतिविधियों से उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म कण, जिन्हें एयरोसोल कहते हैं, बादलों के बनने और उनकी प्रकाशिक मोटाई को प्रभावित करते हैं। इससे बादलों का अल्बेडो (परावर्तन क्षमता) बढ़ता है और हवा में गर्मी को रोकने की क्षमता भी बदल जाती है । ***

परंपरा और पर्यारवरण का प्रतीक है दशहरा

डॉ ओ.पी जोशी



दशहरे पर शमी पूजन की परंपरा न केवल धार्मिक आस्था से जुड़ी है बल्कि इतिहास, लोकजीवन और पर्यावरणीय महत्व को भी दर्शाती है। राजस्थान में खेजड़ी कहलाने वाला यह वृक्ष रेगिस्तान का राजा माना जाता है, जिसकी छाया, फलियां और पत्तियां जीवनदायी हैं।

किंतु अंधाधुंध कटाई और संक्रमण के कारण इनकी संख्या लगातार घट रही है, जिससे संरक्षण की गंभीर चुनौती सामने है। हमारे देश में दशहरे पर शमी के पेड़ को पूजने की परंपरा काफी पुरानी है एवं कुछ मान्यताओं से जुड़ी प्रतीत होती है। भगवान श्रीराम ने लंका पर चढ़ाने से पूर्व शमी पेड़ के समक्ष शीश नवाकर अपनी विजय हेतु प्रार्थना की थी।

पांडवों ने भी अपने अज्ञातवास के समय शामी की खोखल में हथियार छुपाएं एवं अज्ञातवास की समाप्ति पर शमी की पूजन कर हथियार पुनः प्राप्त किये थे। सम्भवतः इन्हीं मान्यताओं के आधार पर शमी का पेड़ विजय का प्रतीक माना जाने लगा एवं पूजन प्रारंभ हुआ होगा।

शमी के पेड़ को राजस्थान में खेजडी, पंजाब में झुंड तथा गुजराती में सुमेरी कहते हैं। वनस्पति शास्त्र में इसे प्रोसोपिस–सिनेरेरिया कहा गया है एवं यह बबुल के कुल मायमोसायडी में शामिल है। शमी के पेड़ औसतन 25–30 फीट ऊंचे, कंटीले छायादार तथा सुखे को सहन करने वाले होते हैं। जड़ें जमीन में 30–40 मीटर तक पहुंच जाती है। तना मोटा, शाखाएं पतली, लटकती हुई तथा छतनार (केनोपी) गोलाकार होती है। छाल खुरदरी, मोटी घूसर रंग (स्लेटी) की तथा लम्बी दरारों युक्त होती है तथा पतियां कुछ इमली के समान।

क्या विशेषता है शमी के पेड़ की

– शीतकाल में सफेद–पीले फूल (मीजर) गुच्छे में लगते हैं एवं गर्मी में फलियां (सेंगरी) पकती है। फलियां 8–10 इंच लम्बी चपटी, गूदेदार तथा 8–10 भूरे अंडाकार बीजों से भरी रहती है। गूदा कुछ मीठा होता है एवं इसमें 11 प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है। नक्षत्रों के संदर्भ में शमी को उत्तर फाल्गुनी एवं घनिष्ठा से जोड़ा गया है एवं राशि अनुसार कुंभ से। प्रसिद्ध खगोलविदब वराहमिहिर ने भूजल की पहचान हेतु पेड़ों के जो जोड़े बताये गये थे उनमें भी शमी–पलाश का जोड़ा शामिल है।

शमी की अधिकांश प्रजातियां प्रमुखता से अरब देशों, ईरान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान तथा भारत के शुष्क एवं अर्धशुष्का इलाकों में पायी जाती है। इसे पश्चिमी राजस्थान का देशज पेड़ बताया गया है परंतु पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र व कर्नाटक में भी पाया जाता है राजस्थान में खेजडी के नाम से प्रसिद्ध यह पेड़ वहां अपना विशेष महत्व रखता है एवं इसे रेगिस्तान की शान या रेगिस्तान का राजा कहा जाता है। पेड़ के सभी भाग उपयोगी होने से इसे राजस्थान का कल्प–वृक्ष भी माना गया है। लकड़ी का उपयोग झोपड़ी नाव व खेती के औजार बनाने के साथ वाद्य यंत्र बनाने में भी किया जाता है। जैसलमैर व जोधपुर के रेगिस्तानी इलाका का एक वाद्ययंत्र कमायचा का उपरी भाग खेजडी तथा निचला भाग आम की लकडी से बनाया जाता है। सूखी लकड़ी जलाने के काम आती है तथा इससे चारकोल भी बनाया जाता है। हरी पतियों चारे के रूप में तथा खाद बनाने में भी उपयोग की जाती है।

फलियों से सब्जी बनायी जाती है, जिसके उपयोग से कॉलेस्टॉल घटने की संभावना भी बताया गयी है (जोधपुर के जे.एम. व्यास वि.वि. का अध्ययन) छाल से प्राप्त गोंद गठिया रोग उपचार में लाभकारी बताया गया है। 1899 ईस्वी में जब भीषण अकाल पड़ा था तब कई लोग एवं पुश छाल खाकर जिंदा बचे थे।

पर्यावरण के संदर्भ में देखा जाए तो ये पेड़ तेज आंधी तूफान में भी धराशायी नहीं होते है एवं उसकी तीव्रता भी कम कर देते हैं। गहरी जड़ें मिट्टी का कटाव रोकती है तथा उन पर पायी जाने वाली छोटी–छोटी गठानों में उपस्थित जीवाणु वातावरण की नाइटोजन से मिट्टी का उपजाऊपन बढ़ाते है। इस पेड़ की महत्ता को जानकर सितंबर 2023 में जी–20 देशों के प्रतिनिधियों ने राजघाट पर जो पौधे रोपे थे, उनमें शमी भी शामिल था।

सेंट्रल एरिड जोन रिसर्च इंस्टीटयूट, जोधपुर के अध्ययन अनुसार एक समय राजस्थान का दो– तिहाई भाग पर फैले खेजड़ी पेड़ों की संख्या घटती जा

रही है। साठ के दशक में प्रति हेक्टर 90 पेड़ थे, जो 2005 तक घट 35 रह गये। किसी फफूंद के संक्रमण तथा कुछ कीटों के आक्रमण से पेड़ खोखले हो समाप्त हो जाते हैं।

पिछले 15–16 वर्षों में जोधपुर, बीकानेर, बाड़मेर व जैसलमेर क्षेत्र में कई निजी कंपनियों द्वारा सोलर संयंत्र लगाने हेतु लगभग 25 लाख पेड़ काट दिए गए। इस कारण संयंत्रों के आसपास 3 से 4 डिग्री सेल्सियस तापमान बढ़ गया। किसानों एवं कुछ संगठनों के विरोध तथा न्यायालय में प्रकरण दाखिल करने पर इन कार्यों पर कुछ विराम लगा। खेजड़ी संरक्षण के यदि उचित प्रयास नहीं किए गए तो यह संकटापन्न की श्रेणी में चला जाएगा।

यहां यह जानना भी प्रासंगिक होगा कि 1730 ईस्वी में जोधपुर के इलाके में बिश्नोई समाज की श्रीअमृता देवी, उनकी तीन पुत्रियां, पति तथा 84 गांवों के 363 लोगों ने खेजड़ी पेड़ों को बचाने हेतु बलिदान दिया था। ***

जल्द दौड़ेगी देश की पहली हाइड्रोजन ट्रैन

हरियाणा के जींद से देश में स्वच्छ ऊर्जा के नए युग की शुरुआत होने जा रही है। भारत का पहला हाइड्रोजन फ्यूल प्लांट लगभग तैयार है और अगले कुछ दिनों में इसका काम पूरी तरह पूरा हो जाएगा। पेट्रोलियम मंत्रालय सहित कुछ विभागों से अंतिम स्वीकृति (एनओसी) मिलना बाकी है, जो जल्द मिलने की उम्मीद है।

प्लांट की जांच के दौरान फायर फाइटिंग सिस्टम में मिली कमियों को दुरुस्त किया जा रहा है। फिलहाल प्लांट में हाइड्रोजन गैस का उत्पादन शुरू हो गया है और इसकी टेस्टिंग जारी है।

यह प्लांट प्रतिदिन 430 किलोग्राम हाइड्रोजन का उत्पादन करेगा, जिस पर करीब 70 करोड़ रुपये की लागत आई है। इस पायलट परियोजना के तहत एक डीजल इलेक्ट्रिक मल्टीपल यूनिट (छ्ब्श्वरू) रैक को हाइड्रोजन ईंधन में अपग्रेड किया जा रहा है। सबसे पहले जींद–गोहाना–सोनीपत रेल मार्ग (करीब 89 किमी) पर हाइड्रोजन से चलने वाली ट्रेन दौड़ेगी। ट्रेन की गति 110 से 140 किमी प्रति घंटे तक होगी और इसमें एक बार में 2638 यात्री यात्रा कर सकेंगे। हाइड्रोजन की आपूर्ति इसी जींद प्लांट से की जाएगी। प्लांट में तीन हजार किलोग्राम भंडारण क्षमता वाला ईंधन स्टेशन, कंप्रेसर और तेज रिफ्यूलिंग के लिए प्री–कूलर इंटीग्रेशन वाले दो डिस्पेंसर लगाए गए हैं।

सदी की नयी चुनौती है अकेलापन

डॉ. कुमार सिद्धार्थ



अकेलापन अब सिर्फ़ भावनात्मक अनुभव नहीं रहा, बल्कि यह धूम्रपान और मोटापे जितना घातक स्वास्थ्य संकट बन चुका है। यह युवाओं में आत्महत्या के जोखिम को कई गुना बढ़ाता है और बुजुर्गों में हृदय रोग व डिमेंशिया का बड़ा कारण बनता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसे गंभीर वैश्विक स्वास्थ्य समस्या मानते हुए सामाजिक जुड़ाव को प्राथमिकता देने पर ज़ोर दिया है।

आपने कभी सोचा है कि अकेलापन सिर्फ एक भावनात्मक अनुभव नहीं, बल्कि हमारे स्वास्थ्य के लिए उतना ही हानिकारक हो सकता है जितना धूम्रपान या मोटापा? बुजुर्गों में यह हृदय रोग का कारण बन सकता है, और मजबूत सामाजिक संबंध मस्तिष्क के स्वास्थ्य को बेहतर बनाते हैं। एक शोध समीक्षा बताती है कि 18 से 29 वर्ष की उम्र में अकेलापन अपने चरम पर होता है। हर तीन में से एक युवा इस अनुभव से गुजरता है, जिससे मानसिक स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। वास्तव में, 2024 के एक अध्ययन में पाया गया कि अकेलेपन से आत्महत्या के जोखिम को 16 गुना तक बढ़ा सकता है।

यही नहीं, हार्वर्ड की एक रिपोर्ट बताती है कि 18–25 वर्ष के हर तीन में से एक युवा अकेला महसूस करता है, और उनमें से आधे से ज़्यादा ने यह माना कि उनके जीवन में उद्देश्य या अर्थ की कमी है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार, हर साल वैश्विक स्तर पर 8 लाख लोग आत्महत्या करते हैं, जबकि आत्महत्या का प्रयास करने वालों की संख्या इससे लगभग 20 गुना अधिक होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन भी मानता है कि अकेलेपन और सामाजिक अलगाव की भावना आत्महत्या के प्रमुख जोखिम

कारकों में से एक हो सकती है।

अब ज़रा वृद्धावस्था की ओर देखिए। शोध बताते हैं कि अकेलेपन से डिमेंशिया का खतरा 31% तक बढ़ जाता है। 'नेचर मेंटल हेल्थ' में प्रकाशित एक रिपोर्ट कहती है कि जो लोग अकेलेपन से जूझते हैं, उनमें भूलने की बीमारी (डिमेंशिया) होने की संभावना अधिक होती है। फ्लोरिडा स्टेट यूनिवर्सिटी की प्रोफेसर मार्टिना लुचेती बताती हैं कि सामाजिक संपर्क की कमी और कम दोस्त होने से मेमोरी लॉस यानी याददाश्त खोने की समस्या बढ़ सकती है।

अब सवाल उठता है कि क्या यह सिर्फ मानसिक स्वास्थ्य तक सीमित है? नहीं। 2018 के एक अध्ययन ने दिखाया कि अकेलापन स्ट्रोक का खतरा 32 फीसदी और कोरोनरी हार्ट डिजीज का खतरा 29 फीसदी तक बढ़ा सकता है। जब लोग अकेला महसूस करते हैं, तो तनाव बढ़ जाता है, जिससे हाई बीपी और सूजन जैसी समस्याएँ जन्म लेती हैं।

शोध बताते हैं कि यदि अकेलेपन को कम किया जाए, तो अवसाद के मामलों में उल्लेखनीय कमी लाई जा सकती है। इसके लिए हमें सामुदायिक और व्यक्तिगत स्तर पर सक्रिय प्रयास करने होंगे। जब कोई व्यक्ति सामुदायिक कार्यक्रमों में भाग लेता है या सामाजिक समूहों से जुड़ता है, तो वह खुद को अधिक जुड़ा हुआ महसूस करता है।

मनोवैज्ञानिक परामर्श और थेरेपी भी उन लोगों के लिए फायदेमंद साबित हो सकती है, जो लंबे समय से अकेलेपन का सामना कर रहे हैं। इसके अलावा, डिजिटल प्लेटफफार्मों का सही उपयोग करके परिवार और दोस्तों से जुड़े रहना, भावनात्मक मजबूती प्रदान कर सकता है।

ऐसे में, सामाजिक अलगाव और अकेलापन स्वास्थ्य और सामाजिक नीति अनुसंधान के महत्वपूर्ण विषय बन गए हैं। दुनिया के कुछ देशों ने नई सदी के इस संकट को पहचाना है। अमेरिकी सरकार ने अकेलापन, सामाजिक अलगाव और सामाजिक संपर्क बढ़ाने के समाधान के लिए एक राष्ट्रीय कार्यक्रम शुरू किया है। अमेरिकी सरकार की तरफ से पिछले साल मई में जारी एक रिपोर्ट कहती है कि महामारी से पहले भी देश के वयस्कों की लगभग आधी आबादी औसत स्तर के अकेलेपन से जूझ रही थी।

डेनमार्क सरकार ने भी अकेलेपन को कम करने के लिए एक राष्ट्रीय पहल शुरू की है। इसमें सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देने और सामाजिक एकांत के प्रभावों को कम करने पर जोर दिया गया है। ब्रिटेन भी 2018 में ऐसा कर चुका है। पिछले पांच वर्षों में यहां कई योजनाएं

शुरू की हैं, जैसे सरकारी अस्पतालों के रिसेप्शनिस्टों को अकेलेपन से जूझ रहे मरीजों की पहचान और उनके साथ बातचीत करने के सही तरीके बताने के लिए प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अकेलेपन को एक गंभीर जन स्वास्थ्य समस्या के रूप में स्वीकार किया है, जो दुनिया की एक चौथाई आबादी को प्रभावित कर रही है। यह केवल एक सामाजिक मुद्दा नहीं, बल्कि एक ऐसी स्वास्थ्य चुनौती है, जो दीर्घकाल में कई शारीरिक और मानसिक बीमारियों को जन्म दे सकती है।

इससे निपटने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने सामाजिक जुड़ाव को बढ़ावा देने के उद्देश्य से एक वैश्विक आयोग की घोषणा की। इस आयोग में कुल 11 सदस्य शामिल हैं, जिन्हें तीन महत्वपूर्ण जिम्मेदारियाँ सौंपी गई हैं वैश्विक स्तर पर सामाजिक जुड़ाव को प्राथमिकता देने के लिए एक स्पष्ट एजेंडा तैयार करना, अकेलेपन और सामाजिक अलगाव के दुष्प्रभावों को लेकर जागरूकता फैलाना, साक्ष्य–आधारित समाधानों के लिए विभिन्न देशों, संगठनों और नीति–निर्माताओं के साथ सहयोग करना।

विश्व स्वास्थ्य संगठन का यह कदम अकेलेपन को एक गंभीर स्वास्थ्य संकट के रूप में पहचानने और इसे कम करने के लिए ठोस प्रयासों को सुनिश्चित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल है। यह आयोग दुनिया भर में सामाजिक संबंधों को मजबूत करने और मानसिक स्वास्थ्य पर इसके सकारात्मक प्रभावों को बढ़ावा देने का काम करेगा।

तो, क्या भारत में भी इस दिशा में कदम उठाने की ज़रूरत है? यह सवाल इसलिए अहम है क्योंकि यहाँ अकेलापन केवल बुजुर्गों तक सीमित नहीं है, बल्कि शहरीकरण, डिजिटल लाइफस्टाइल और सोशल मीडिया की अधिकता के कारण युवा भी इससे प्रभावित हो रहे हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 50% बुजुर्ग अकेलापन महसूस करते हैं, और यह उनके मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। पर इससे बचने के उपाय क्या हैं? शोध बताते हैं कि सामाजिक सहभागिता बढ़ाने से, परिवार और दोस्तों से जुड़े रहने से, मनोवैज्ञानिक परामर्श लेने से और नियमित स्वास्थ्य जांच करवाने से अकेलापन कम किया जा सकता है।

भारत में अकेलेपन और अवसाद से निपटने के लिए वर्तमान में कोई विशिष्ट राष्ट्रीय नीति नहीं बनी है, जबकि कई अन्य देशों ने इस दिशा में पहल की है। 2015–2016 में केंद्रीय

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा जारी 'नेशनल मेंटल हेल्थ सर्वे' में भी अकेलेपन का जिक्र नहीं किया गया। हालांकि, मानसिक स्वास्थ्य को संबोधित करने के लिए सरकार ने कई पहलें की हैं।

2017 में, 'मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम' लागू किया गया, जो मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच को सुनिश्चित करता है और मानसिक रोगियों के अधिकारों की रक्षा करता है। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम के माध्यम से मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार और सुदृढ़ीकरण किया जा रहा है। वहीं वर्तमान में, भारत में बुजुर्गों से संबंधित दो राष्ट्रीय नीतियां मौजूद हैं, लेकिन उनमें भी अकेलेपन पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। 1999 में जारी 'राष्ट्रीय बुजुर्ग नीति' में अकेलेपन का जिक्र सिर्फ एक बार हुआ है।

अकेलेपन और सामाजिक अलगाव की बढ़ती समस्या को देखते हुए, भारत में भी एक समग्र नीति की आवश्यकता महसूस की जा रही है, जो मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक सहभागिता और सामुदायिक समर्थन को बढ़ावा देने पर केंद्रित हो। इन नीतियों में सामुदायिक जुड़ाव को प्रोत्साहित करना, मानसिक स्वास्थ्य शिक्षा को बढ़ावा देना, और सामाजिक समर्थन नेटवर्क को मजबूत करना शामिल हो सकता है।

इससे न केवल मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच बढ़ेगी, बल्कि समाज में मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता और संवेदनशीलता भी बढ़ेगी। सवाल सिर्फ यह है कि हम इसके लिए कितने तैयार हैं? ***

यूनेस्को ने भारत के कोल्ड डेजर्ट बायोस्फेयर रिज़र्व को दी मान्यता

यूनेस्को ने दुनियाभर के 26 बायोस्फेयर रिजर्व की नई सूची में भारत के ट्रांस हिमालयी क्षेत्र में स्थित कोल्ड डेजर्ट बायोस्फेयर रिजर्व को भी शामिल किया है। यूनेस्को के मुताबिक उत्तर भारत में ये बायोस्फेयर हिमाचल प्रदेश के लाहौल-स्पीति जिले से जुड़े हिमालयी क्षेत्र में 7,770 वर्ग किलोमीटर दायरे में फैला है। इस क्षेत्र में तेज हवाओं वाले पठार, हिमनद घाटियां, अल्पाइन झीलें और ऊंचे ऊबड़-खाबड़ रेगिस्तान शामिल हैं। यूनेस्को ने इसे दुनिया के बायोस्फेयर रिजर्व नेटवर्क का सबसे ठंडा और सूखा इकोसिस्टम भी माना है।

यूनेस्को ने इस साल सबसे ज्यादा 21 देशों के 26 नए बायोस्फेयर रिजर्व की घोषणा की है। ये पिछले 20 सालों में सबसे ज्यादा है। इसके बाद विश्व बायोस्फेयर रिजर्व नेटवर्क में 142 देशों के 785 स्थान शामिल हो गए हैं।

संघ : पंच परिवर्तन से समाज परिवर्तन

डॉ. खुशालसिंह पुरोहित



वर्तमान युग में मनुष्य भौतिक प्रगति के शिखर पर पहुँचते हुए भी एक ऐसे मोड़ पर खड़ा है जहाँ पर्यावरणीय संकट उसके अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लगा रहा है। आधुनिक यंत्रों की चमक, तकनीकी क्रांति की गति और उपभोग की अंधी दौड़ ने प्रकृति के संतुलन को झकझोर दिया है।

नदियाँ सूख रही हैं, वनों का ह्रास हो रहा है, जलवायु का तापमान बढ़ रहा है और प्राणवायु तक दूषित हो गयी है। इस विकराल स्थिति में विश्व के वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री और नीति-निर्माता अनेक तकनीकी उपायों पर विचार कर रहे हैं, परंतु केवल विज्ञान के तकनिकी साधनों से यह संकट टल नहीं सकता है। इस समस्या की जड़ें मानव के विचार, आचरण और दृष्टिकोण में हैं। इसलिए जब तक मनुष्य के भीतर नैतिक और सांस्कृतिक जागृति नहीं आएगी, तब तक इस समस्या का कोई स्थायी समाधान संभव नहीं। भारतीय संस्कृति ने सदैव यह सिखाया है कि प्रकृति हमारे साथ नहीं, हमारे भीतर है - प्रकृति हमारी माँ है, केवल उपभोग की वस्तु नहीं। इसी जीवनदृष्टि के पुनरुद्धार का प्रयास राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपने कार्यों के माध्यम से कर रहा है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, जिसकी स्थापना 1925 में डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार ने की थी, यह केवल एक संगठन नहीं, बल्कि एक जीवंत सामाजिक आंदोलन है। यह एक ऐसी साधना जो व्यक्ति के माध्यम से समाज और समाज के माध्यम से राष्ट्र के पुनर्निर्माण का लक्ष्य रखती है। संघ का उद्देश्य व्यक्ति निर्माण, चरित्र निर्माण और सामाजिक समरसता की स्थापना है।

संघ का यह मानना है कि यदि समाज में वास्तविक परिवर्तन लाना है, तो परिवर्तन केवल बाहर से नहीं, भीतर से लाना होगा। इसी विचार के आधार पर संघ ने 'पंच परिवर्तन' का सूत्र प्रस्तुत किया है। जिसमें स्वबोध, पर्यावरण, सामाजिक समरसता, नागरिक शिष्टाचार और पारिवारिक प्रबोधन। ये पाँच आयाम मिलकर सामाजिक नहीं अपितु युग परिवर्तन के वाहक बनेंगे।

इन पाँच परिवर्तनों में 'पर्यावरण' का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह केवल भौतिक जीवन से नहीं, बल्कि मानव की आत्मा से जुड़ा है। हमारी संस्कृति ने प्रकृति को देवत्व प्रदान किया है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों और लोककथाओं में पृथ्वी, नदियाँ, वृक्ष, पर्वत, अग्नि और वायु की उपासना इसीलिए की गई कि मनुष्य इन तत्वों के प्रति कृतज्ञता और आदर का भाव रखे। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' यह वाक्य केवल धार्मिक उच्चारण नहीं, बल्कि भारतीय पारिस्थितिकी दर्शन का मूल तत्व है। इसका अर्थ है कि मनुष्य और धरती के बीच मातृत्व का पवित्र संबंध है।

ईशावास्योपनिषद का यह वचन 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत' आधुनिक पर्यावरणीय सिद्धांतों से बहुत गहराई तक जुड़ा हुआ है। यह कहता है कि सृष्टि का प्रत्येक कण ईश्वर से व्याप्त है, इसलिए किसी भी वस्तु का उपयोग संयम और कर्तव्य–बोध के साथ होना चाहिए। यह भाव सतत विकास का वास्तविक आधार है। जिस 'सतत विकास की बात आज पश्चिमी देश कर रहे हैं, वही दृष्टि भारत में हजारों वर्ष पूर्व से व्यक्ति के दैनिक जीवन के व्यवहार में थी।

भारत का आर्थिक विकास आज विश्व में चर्चा का विषय है। यह प्रसन्नता का कारण तो है, परंतु चिंता का भी कारण है। एक ओर लाखों लोग गरीबी और अभाव से निकलकर बेहतर जीवन स्तर की ओर बढ़ रहे हैं, तो दूसरी ओर यही विकास हमारे पर्यावरणीय संसाधनों को तेज़ी से नष्ट कर रहा है। औद्योगीकरण, नगरीकरण और अनियंत्रित उपभोग की दृष्टी ने हमारी वायु, जल और भूमि को प्रदूषित कर दिया है। शहरों की हवा दमघोंटू हो गई है, नदियाँ सीवर का रूप ले चुकी हैं और खेतों की मिट्टी रासायनिक विष से भर रही है।

वैज्ञानिक रिपोर्टों में बताया गया है कि नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम का अनुपात, जो 4:2:1 होना चाहिए, अब 31:4.8:0.1 हो गया है। यह असंतुलन मिट्टी की आत्मा को नष्ट कर रहा है। प्लास्टिक का अत्यधिक उपयोग भूमि और समुद्र दोनों के जीवन को मार रहा है।

यह स्थिति केवल सरकार के प्रयासों से सुधरने वाली नहीं है। इस संबंध में जब तक समाज स्वयं जिम्मेदारी नहीं लेगा, तब तक पर्यावरणीय संतुलन एक सपना ही रहेगा। यही वह स्थान है जहाँ संघ का दृष्टिकोण अत्यंत व्यावहारिक और प्रभावी सिद्ध हो सकता है।

संघ का यह दृष्टिकोण केवल सैद्धांतिक नहीं, बल्कि कर्मपरक है। संघ ने भारतीय परंपरा और आधुनिक आवश्यकताओं का समन्वय करते हुए अनेक योजनाएँ चलाई है। 'वृक्ष बंधन' कार्यक्रम में लोग वृक्षों को राखी बाँधकर उनके संरक्षण का संकल्प लेते हैं। यह एक प्रतीकात्मक किन्तु अत्यंत गहरा संदेश देता है कि वृक्ष केवल ऑक्सीजन देने वाला साधन नहीं, बल्कि हमारे जीवन का आत्मीय साथी है। इसी तरह 'जल संचर' योजना के अंतर्गत परंपरागत जल स्रोतों – तालाब, बावड़ियाँ, कुएँ – का संरक्षण किया जा रहा है। संघ के स्वयंसेवकों ने नर्मदा, गोदावरी और कावेरी जैसी नदियों के पुनर्जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ये सामाजिक प्रयास बताते हैं कि जनसहभागिता से जल प्रबंधन के क्षेत्र में अद्भुत परिवर्तन लाया जा सकता है।

कृषि के क्षेत्र में 'कृषि भूषण' योजना किसानों को जैविक खेती की ओर अग्रसर कर रही है। संघ के प्रेरक कार्यकर्ताओं ने सैकड़ों गाँवों में रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर पंचगव्य, नीम अर्क और जीवामृत जैसे प्राकृतिक उत्पादों के प्रयोग को लोकप्रिय बनाया है। इससे न केवल भूमि की उर्वरता बढ़ी है, बल्कि किसानों की आत्मनिर्भरता भी सशक्त हुई है। यह केवल खेती की पद्धति में परिवर्तन नहीं, बल्कि विचार में परिवर्तन है। यह उपज का नहीं, प्रकृति के संतुलन का संस्कार है।

पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र में भी संघ की पहल उल्लेखनीय है। विद्यालयों और महाविद्यालयों में ईको क्लब, वृक्षारोपण, स्वच्छता अभियान और जल संरक्षण प्रतियोगिताओं के माध्यम से युवाओं में पर्यावरणीय उत्तरदायित्व का भाव जाग्रत किया जा रहा है।

संघ के स्वयंसेवक बच्चों को यह सिखाते हैं कि पर्यावरण की रक्षा केवल सरकार की जिम्मेदारी नहीं, बल्कि हमारा नागरिक धर्म है। यह विचार जब बचपन में ही अंकुरित होता है, तो वह जीवनभर संस्कार के रूप में साथ रहता है।

संघ के सरसंघचालक डॉ. मोहन भागवत ने 'प्रकृति वंदन' अभियान के माध्यम से इस बात पर बल दिया कि मनुष्य को अपनी जीवनशैली का पुनर्मूल्यांकन करना चाहिए। उनका विचार है कि आधुनिक उपभोक्तावादी दृष्टिकोण, जो प्रकृति को केवल भोग की वस्तु मानता

है, वही दीर्घकालीन विनाश का कारण बन रहा है। जब हम प्रकृति को केवल संसाधन मानते हैं, तो उसका दोहन करते हैं; पर जब हम उसे जीवंत इकाई मानते हैं, तो उसका संरक्षण करते हैं। यही दृष्टि परिवर्तन आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

संघ की कार्यशैली का सार यह है कि वह किसी बाहरी आदेश पर नहीं, बल्कि आत्मानुशासन और आत्मप्रेरणा पर आधारित है। स्वयंसेवक अपने आचरण से प्रेरणा देता है। वह दिखाता नहीं, करता है। जब गाँवों में वे तालाब की मरम्मत करते हैं, वृक्ष लगाते हैं या जलस्रोत साफ़ करते हैं, तो यह केवल पर्यावरणीय सेवा नहीं, बल्कि समाज में 'कर्तव्य भावना' का पुनर्जागरण है। यह सेवा नहीं, साधना है। यह जन आंदोलन नहीं अपितु आत्मजागरण का मन्त्र है।

भारतीय दर्शन में प्रकृति के प्रति यह दृष्टि अत्यंत सूक्ष्म है। वेदों में कहा गया 'पृथ्वीं धेनुमिव धेनुमुपस्मस' अर्थातब धरती हमारी गाय के समान है, जो हम सबका पोषण करती है। जब मनुष्य इस भाव से जीवन जीता है, तब वह न तो प्रकृति का शोषक बनता है और न ही उसका स्वामी। वह केवल संरक्षक और सहयोगी बनता है। यही संघ का प्रयास है, मनुष्य और प्रकृति के बीच सहजीवन की भावना को पुनर्जीवित करना।

आज जब पूरा विश्व जलवायु परिवर्तन, सूखा, बाढ़ और चरम मौसम की घटनाओं से जूझ रहा है, तब भारत का यह संस्कृति–प्रेरित दृष्टिकोण मानवता के लिए मार्गदर्शन का कार्य कर सकता है। पश्चिमी देशों में पर्यावरणीय आंदोलन प्राय: संघर्ष और विरोध की भाषा में चलते हैं, जबकि भारत में यह जीवन का उत्सव है 'प्रकृति पूजा'। संघ इसी उत्सवधर्मी दृष्टि को आधुनिक समाज में स्थापित कर रहा है, जहाँ पर्यावरण संरक्षण केवल कर्तव्य नहीं, बल्कि आनंद का विषय बनता है।

संघ का स्पष्ट मानना है कि विकास और संरक्षण एक–दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं। यदि विकास संतुलन, नैतिकता और संस्कृति के अनुरूप हो, तो वही सच्चा विकास है। उद्योग आवश्यक हैं, पर ऐसे उद्योग जो ऊर्जा–संवर्धन करें, जो पर्यावरणीय संतुलन को न बिगाड़ें। इसी प्रकार, तकनीक भी तभी कल्याणकारी है जब वह मनुष्य के अहंकार को नहीं, उसकी संवेदना को बढ़ाए।

आज समय आ गया है कि हम विकास की परिभाषा पर पुनर्विचार करें। देश में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, बाजार का विस्तार या उत्पादन की बढ़ती मात्रा ही किसी राष्ट्र की समृद्धि नहीं है, सच्ची समृद्धि वह है जहाँ वायु शुद्ध हो, जल स्वच्छ हो

और पृथ्वी की गोद हरित रहे। संघ की पर्यावरणीय दृष्टि और प्रयास इसी समग्र समृद्धि की ओर संकेत करती है।

जब हम पंच परिवर्तन के माध्यम से जीवन को पुनर्गठित करेंगे, तो आत्मबोध से लेकर परिवार और समाज तक युग परिवर्तन का नया सूत्र पल्लवित पुष्पित होगा। यदि प्रत्येक नागरिक अपने दैनिक जीवन में संयम, सरलता और सेवा का भाव लाए, तो न केवल पर्यावरण सुधरेगा बल्कि व्यक्ति का नैतिक स्तर भी सुदृढ़ होगा।

संघ का यह दृष्टिकोण हमें यह सिखाता है कि पर्यावरण की रक्षा केवल भौतिक सुरक्षा का प्रश्न नहीं, बल्कि राष्ट्रीय सांस्कृतिक अस्तित्व का प्रश्न है। जिस देश की संस्कृति 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना से ओत-प्रोत है, उसे अपनी इस भावना को व्यवहार में भी उतारना होगा। जब तक मनुष्य अपने भीतर यह अनुभव नहीं करता कि वह पृथ्वी का स्वामी नहीं, उसका पुत्र है, तब तक न तो प्रकृति सुरक्षित होगी, न ही मानवता का भविष्य उज्जवल होगा।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की पर्यावरणीय चेतना इस सत्य को पुनः स्मरण कराती है कि प्रकृति हमारे जीवन का मूल है। प्रकृति संरक्षण करना केवल आवश्यकता नहीं, बल्कि युग धर्म है। यही दृष्टि आधुनिक विश्व को नयी दिशा दे सकती है। जब यह चेतना समाज के प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचेगी, तब पंच परिवर्तन से युग परिवर्तन का स्वप्न साकार होगा। भारत का विश्व को यह सन्देश होगा कि सच्चा विकास वही है जिसमें मनुष्य और प्रकृति दोनों का कल्याण समाहित हो। ***

भारत के तीन प्रोफेसर दुनिया के शीर्ष विज्ञानियों में शामिल

गौहाटी विश्वविद्यालय के तीन प्रोफेसरों ने दुनिया के शीर्ष दो प्रतिशत विज्ञानियों में शामिल होकर देश को गौरवान्वित किया है। अमेरिका के स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय ने इन विज्ञानियों की सूची तैयार की है। दुनिया के नामी विश्वविद्यालय की तरफ से कहा गया है कि प्रसिद्ध मौसम विज्ञानी प्रोफेसर भूपेंद्र नाथ गोस्वामी, रसायन विज्ञान विभाग के प्रोफेसर प्रदीप फुकन और गणित विभाग के प्रोफेसर बिपन हजारिका की अनुसंधान के प्रति लगन और अब तक के उनके करियर में उल्लेखनीय योगदान को देखते हुए इस सूची में शामिल किया गया है।

प्रोफेसर गोस्वामी ने वैश्विक स्तर पर 22,145वां स्थान प्राप्त किया, जबकि प्रोफेसर प्रदीप फुकन 142,822 वें स्थान पर रहे। वहीं प्रोफेसर बिपन हजारिका 361,120वें स्थान पर आए।

दिल्लीः मुसीबत बनती लैंडफिल गैसें

प्रमोद भार्गव



दिल्ली की आबोहवा खराब करने में कचरों के ऐसे ठिकाने खतरनाक साबित हो रहे हैं, जिनसे लैंडफिल गैसें हवा और जल स्त्रोतों को एक साथ प्रदूषित करते हैं।

दिल्ली समेत समूचे राजनीति क्षेत्र में अनेक लैंडफिल ठिकाने हैं। इसलिए इस पूरे क्षेत्र में कचरे के इन ढेरों से फूटती लैंडफिल नामक शैतानी गैसों से एक बड़ी आबादी का जीना कठिन हो गया है। इन ठिकानों को हटाने और कचरे का वैज्ञानिक ढंग से निस्तारण करने के लिए विभिंन्न संस्थाएं राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण और सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटा चुकी हैं, लेकिन अब तक नतीजा ढांक के तीन पांत ही रहा है। अब मौसम विभाग की तर्ज पर लैंडफिल ठिकानों पर 'अर्ली वार्निंग सिस्टम' जैसी व्यवस्था होगी।

इस कचरे से उत्सर्जित होने वाली तीव्र ज्वलनशील मीथेन गैस को चिन्हित करने वाले डिटेक्टर भी लगाए जाएंगे। इन ठिकानों के तापमान पर भी निगरानी रखने के लिए 'नान कांटेक्ट इंफ्रारेड थर्मामीटर' लगाए जाएंगे। वायु गुणवत्ता प्रबंधन आयोग (सीक्यूएम) ने इन साइटों पर आग लगने की घटनाओं को थामने और इससे होने वाले प्रदूषण की रोकथाम के लिए 8 सूत्रीय निर्देश भी जारी किए हैं। इन निर्देशों का पालन दिल्ली, हरियाणा, उत्तरप्रदेश एवं राजस्थान सरकार को एनसीआर नगरों की सभी लैंडफिल साइटों पर इन निर्देशों का पालन करना होगा।

दिल्ली में गाजीपुर, भलस्वा तथा ओखला में लैंडफिल ठिकाने हैं। इनमें रोजाना हजारों टन कचरा डाला जाता है। इसके वैज्ञानिक ढंग से निस्तारण के कोई तकनीकी इंतजाम नहीं हैं। एनजीटी ने एक

समिति का गठन कर उससे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के कचरे से बिजली पैदा करने की संभावना तलाशने को कहा था, लेकिन दिल्ली सरकार, दिल्ली प्रदूशण नियंत्रण समिति और केंद्रीय प्रदूशण नियंत्रण बोर्ड किसी परिणाम तक नही पहुंच पाए। इन ढेरों में अचानक आग भी लग जाती है, इस कारण समूचे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में वायु प्रदूषण जानलेवा साबित होने लगता है।

पर्यावरणीय मामलों के प्रमुख वकील गौरव बंसल का कहना है कि ये लैंडफिल कचरों के ठिकाने नहीं हैं। क्योंकि ऐसे ठिकानों के लिए विशेष डिजाइन और कायदे–कानून का प्रावधान है। कचरा डालने से पहले इन मैदानों में मिट्टी, प्लास्टिक, जैव और जैव–चिकित्सा जैसे कचरे को अलग किया जाता है। जबकि इन ठिकानों पर ऐसा कुछ भी नहीं होता है। इसलिए ये ठिकाने वेस्ट डंपिंग ग्राउंड बनकर रह गए हैं। दरअसल मीथेन गैस अत्यधिक ज्वलनशील गैस है।

अन्य स्रोतों के अलावा लैंडफिल ठिकाने पर जमा जैविक कचरे के विघटित होने से मीथेन गैस का उत्सर्जन होता है। इस गैस में रंग और गंद नहीं होते है। इस कारण इसके रिसाव का पता नहीं चलता है। माना जाता है कि हवा में 5 से 15 प्रतिशत की सांद्रता से भी आग लग सकती है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के पूर्व अपर निदेशक डॉ एसके त्यागी का कहना है कि मीथेन ग्रीन हाउस गैस है।

उपग्रह से इसकी निकली छवि को देखा जा सकता है। इसे ट्रेप कर इसका उपयोग करने पर काम होना चाहिए। लेकिन सबसे ज्यादा जरूरी है कि महानागरों में इस तरह के बड़े कचरे के ढेरों को एकत्रित करने से रोका जाए। इसके लिए कचरे को अलगाने, उसे रिसाइकल करने एवं उससे खाद एवं ईंधन तैयार करने पर विचार होना चाहिए।

दरअसल लैंडफिल गैसें उन स्थलों से उत्सर्जित होती हैं, जहां गड्ढों में षहरी कचरा भर दिया गया हो। इस कचरे में औद्योगिक कचरा भी षमिल हो तो इसमें प्रदूशण की भयानकता और बढ़ जाती है। नए षोधों से पता चला है कि नियम–कानूनों को ताक पर रखकर लापरवाही से तैयार किए भूखंडों पर खड़ी इमारतों में चल रहे सूचना तकनीक के कारोबार में प्रयुक्त चांदी, तांबा और पीतल के कल–पूर्जों की सेहत लैंडफिल गौसों के संपर्क में आकर बिगड़ जाती है।

इनका हमला निर्जीव यांत्रिक उपकरणों पर ही नहीं मानव स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल असर डालता है। हमारे देष की महानगर पालिकाएं और भवन–निर्माता गड्ढो वाली भूमि के समतलीकरण का बड़ा

आसान उपाय इस कचरे से खोज लेते हैं। रोजाना घरों से निकलने वाले कचरे और इलेक्ट्रॉनिक कचरे से गड्ढों को पाटने का काम बिना किसी रासायनिक उपचार के कर दिया जाता है। इस मिश्रित कचरे में मौजूद विभिन्न रसायन परस्पर संपर्क में आकर जब पांच-छह साल बाद रासायनिक क्रियाएं करते हैं, तो इसमें से जहरीली लैंडफिल गैसें पैदा होने लगती हैं।

इनमें हाइड्रोजन पेरोक्साइड, हाइड्रोजन ऑक्साइड, मीथेन, कार्बन मोनोऑक्साइड और सल्फर डाइ ऑक्साइड इत्यादी होती हैं। कचरे के सड़ने से बनने वाली इन बदबूदार गैसों को वैज्ञानिकों ने लैंडफिल गैसों के दर्जे में रखकर एक अलग ही श्रेणी बना दी है। दफन कचरे में भीतर ही भीतर जहरीला तरल पदार्थ जमीन की दरारों में रिसता है। यह जमीन के भीतर रहने वाले जीवों के लिए प्राणघातक होता है। भूगर्भ में निरंतर बहते रहने वाले जल-स्रोतों में मिलकर यह शुद्ध पानी को जहरीला बना देता है। गंधक के अनेक जीवाणुनाशक यौगिक भूमि में फैलकर उसकी उर्वरा क्षमता को नष्ट कर देते हैं।

आधुनिक जीवन शैली बहुत अधिक कचरा पैदा करती है। इसलिए भारत ही नहीं, दुनिया के ज्यादातर विकसित और विकासशील देश कचरे को ठिकाने लगाने की समस्या से जूझ रहे हैं। लेकिन ज्यादातर विकसित देशों ने समझदारी बरतते हुए इस कचरे को अपने देशों में ही नष्ट कर देने की कार्यवाही पर रोक लगा दी है।

दरअसल पहले इन देशों में भी इस कचरे को धरती में गड्ढे खोदकर दफना देने की छूट थी। लेकिन जिन-जिन क्षेत्रों में यह कचरा दफनाया गया, उन-उन क्षेत्रों में लैंडफिल गैसों के उत्सर्जन से पर्यावराण बुरी तरह प्रभावित होकर खतरनाक बीमारियों का जनक बन गया।

जब ये रोग लाइजाज बीमारियों के रूप में पहचाने जाने लगे तो इन देशों का शासन-प्रशासन जागा और उसने कानून बनाकर औद्योगिक व घरेलू कूड़े-कचरे को अपने देश में दफन करने पर सख्त प्रतिबंध लगा दिए। तब इन देशों ने इस कचरे को ठिकाने लगाने के लिए लाचार देशों की तलाश की और सबसे लाचार देश निकला भारत। दुनिया के 105 से भी ज्यादा देश अपना औद्योगिक कचरा भारत के समुद्री तटवर्ती इलाकों में जहाजों से भेजते हैं। इन देशों में अमेरिका, चीन, ब्राजील, आस्ट्रेलिया, जर्मनी और ब्रिटेन प्रमुख हैं।

नेशनल एनवायरमेंट इंजीनियारिंग रिसर्च इंस्टीयूट के एक शोध पत्र के अनुसार वर्ष 1997 से 2005 के बीच भारत में प्लास्टिक कचरे के आयात में 82 फीसदी

की बढ़ोत्तरी हुई है। ये आयात देश में पुनर्शोधन व्यापार को बढ़ावा देने के बहाने किया जाता है। इस क्रम में विचारणीय पहलू यह है कि इस आयातित कचरे में खतरनाक माने जाने वाले ऑर्गेनो–मरक्यूरिक यौगिक निर्धारित मात्रा से 1500 गुना अधिक पाए गए हैं, जो कैंसर जैसी लाइजाज और भयानक बीमारी को जन्म देते हैं। सर्वोच्च न्यायालय की मुल्याकांन समीति के अनुसार देष में हर साल 44 लाख टन कचरा पैदा होता है।

ऑर्गेनाइजेशन फॉर कॉरपोरेशन एंड डवलपमेंट ने इस मात्रा को 50 लाख टन बताया है। इसमें से केवल 38.3 प्रतिशत कचरे का ही पुनर्शोधन किया जा सकता है, जबकि 4.3 प्रतिशत कचरे को जलाकर नष्ट किया जा सकता है। लेकिन इस कचरे को औद्योगिक इकाईयों द्वारा ईमानदारी से पूनर्षोधित न किया जाकर ज्यादातर जल स्त्रोतों में धकेल दिया जाता है।

कचरा भण्डारों को नष्ट करने के ऐसे ही फौरी उपायों के चलते एक सर्वे में पर्यावरण नियोजन एवं समन्वय संगठन ने पाया है कि हमारे देश के पेयजल में 750 से 1000 मिलिग्राम प्रति लीटर तक नाइट्रेट पानी में मिला हुआ है और अधिकांश आबादी को बिना किसी रासायनिक उपचार के पानी प्रदाय किया जा रहा है, जो लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा असर डालता है। एप्को के अनुसार नाइट्रेट बढ़ने का प्रमुख कारण औद्योगिक कचरा, मानव व पशु मल है।

ऐसे ही कारणों से लैंडफिल गैंसों का उत्सर्जन बढ़ रहा है। नतीजतन बच्चों में ब्लू बेबी सिंड्रोम जैसी बीमारी फैल रही है। इन गैसों के आंख, गले और नाक में स्थित श्लेष्मा परत के संपर्क में आने से दमा, सांस, त्वचा और एलर्जी की बिमारियां बढ़ रही हैं। कचरा मैदानों के ऊपर बने भवनों में रहने वाले लोगों में से, खास तौर से महिलाओं में मूत्राशय का कैंसर होने की आशंका बढ़ जाती है। लैंडिफिल गैंसें इन खतरों को चार गुना बढ़ा देती हैं। यह प्रदूषण गर्भ में पल रहे शिशु को भी प्रभावित करता है।

नियमानुसार कचरा मैदानों में भवन निर्माण का सिलसिला 15 साल बाद होना चाहिए। इस लंबी अवधि में कचरे के सड़ने की प्रक्रिया पूर्ण होकर लैंडफिल गैसों का उत्सर्जन भी समाप्त हो जाता है और जल में घुलनषील तरल पदार्थ का बनना भी बंद हो जाता है।

लेकिन प्रकृति की इस नैसर्गिक प्रक्रिया के पूर्ण होने से पहले ही हमारे यहां जमीन के समतल होने के तत्काल बाद ही आलीषान इमारतें खड़ी करने का सिलसिला शुरू कर देते हैं। जिसका नतीजा

उस क्षेत्र में रहने वाली आबादी और इलेक्ट्रोनिक उपकरणों को भुगतना होता है।

अब इस औद्योगिक व घरेलू कचरे को नश्ट करने के प्राकृतिक उपाय भी सामने आ रहे है। हालांकि हमारे देष के ग्रामीण अंचलों में घरेलू कचरे व मानव एवं पषु मल–मूत्र को घर के बाहर ही घरों में प्रसंस्करण करके खाद बनाने की परंपरा रही है। इसके चलते कचरा महामारी का रूप धारण कर जानलेवा बीमारियों का पर्याय न बनते हुए खेत की जरूरत के लिए ऐसी खाद में परिवर्तित होता है, जो फसल की उत्पादकता व पौष्टिकता बढ़ाता है।

अब एक ऐसा ही अद्वितीय व अनूठा प्रयोग औद्योगिक व घरेलू जहरीले कचरे को नश्ट करने में सामने आया है। अभी तक हम केंचुओं का इस्तेमाल खेतों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए वर्मी कंपोस्ट खाद कें निर्माण में करते रहे हैं। हालांकि खेतों की उर्वरा क्षमता बढ़ाने में केंचुओं की उपयोगिता सर्वविदित है, पर अब औद्योगिक कचरे को केंचुओं से निर्मित वर्मी कल्चर से ठिकाने लगाने का सफल प्रयोग हुआ है।

अहमदाबाद के निकट मुथिया गांव में एक पायलट परियोजना षुरू की गई है। इसके तहत जमा 60 हजार टन कचरे में 50 हजार केंचुए छोड़े गए थे। चमत्कारिक ढंग से केंचुओं ने इस कचरे का सफाया कर दिया। फलस्वरूप यह स्थल पूरी तरह प्राकृतिक ढंग से जहर के प्रदूषण से मुक्त हो गया।

लैंडफिल गैसों से सुरक्षा के लिए कचरे को नष्ट करने के कुछ ऐसे ही प्राकृतिक उपाय अमल में लाने होंगे, जिससे कचरा मैदानों में बसी आबादी के लोग और इलेक्ट्रॉनिक उपकरण सुरक्षित रहें। ***

मप्र में हैप्पीनेस के पैमाने का मूल्यांकन कराएगी सरकार

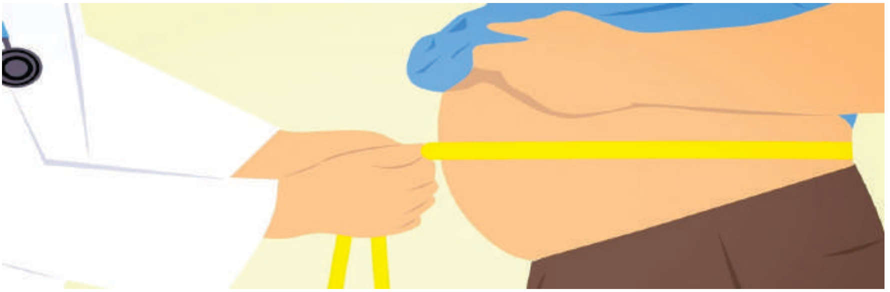
मध्य प्रदेश में राज्य सरकार हैप्पीनेस के पैमाने का मूल्यांकन कराएगी। इसके लिए आइआइटी खड़गपुर का सहयोग लिया जाएगा। इसके तहत शहरी और ग्रामीण आबादी की जीवनशैली व प्रसन्नता के स्तर का अध्ययन किया जाएगा।

लोगों में निराशा का भाव यानी डिप्रेशन क्यों बढ़ रहा है, इसे कैसे दूर किया जा सकता है, इसके सुझाव भी लिए जाएंगे। इसके अलावा गांवों को आनंद ग्राम के रूप में विकसित किया जाएगा।

पायलट प्रोजेक्ट के रूप में ऐसे ग्राम, जहां सद्भावना, भाईचारा, परस्पर सहयोग और आनंद का भाव प्रमुख हो, उन्हें उदाहरण के रूप में सामने लाया जाएगा।

गंभीर होती मोटापे की समस्या

डॉ. नमिता शर्मा



मोटापा, स्थूलता, ओबेसिटी यानि शरीर में जरूरत से ज्यादा फैट, चर्बी या वसा जमा हो जाना। कम लोग जानते हैं कि मोटापा अब एक रोग में शामिल हो गया है। केन्द्र, राज्य सरकारों और स्वास्थ्य प्रणाली के लिये मोटापा बड़ा गम्भीर विषय बन गया है। ये रोग हर उम्र में तेज़ी से पनप रहा है। बहुत से मंत्रालयों ने एकजुट होकर मोटापे से जूझने के अभियान और योजनाएं शुरू कर दी हैं, जैसे – 'फिट इंडिया,' 'ईट इंडिया,' 'खेलो इंडिया' और पोषण आहार के विभिन्न कार्यक्रम।

इन कार्यक्रमों का क्रियान्वयन अच्छे ढंग से हो तो आने वाले दिनों में कुछ सुधार संभव है, किन्तु फिलहाल तो मोटापे के आंकड़े कुछ और ही कहते हैं। अपने देश में मोटापे के आंकड़े चौंका देने वाले हैं। सन् 2005 से 2015 तक मोटापे की दर दुगनी हो गयी थी। उसके बाद इन आंकड़ों में तेज़ी से इजाफा हुआ। आज देश के 40.3 प्रतिशत लोग मोटापे से ग्रस्त हैं। जापान में यह दर केवल 4.5% है और अमेरिका में 41.9 प्रतिशत। एक अध्ययन के मुताबिक भारत में हर पांचवां व्यक्ति मोटापा–ग्रस्त है। बच्चे, जवान, अधेड़, बूढ़े और सभी वर्ग, लिंग के लोग मोटापे की चपेट में आ रहे हैं।

एक जमाने में मोटापा केवल समृद्ध लोगों की बीमारी माना जाता था, किन्तु अब यह निम्न–आय वर्ग के लोगों में भी देखने को मिल रहा है। इसी तरह पहले यह केवल शहरों की समस्या थी, किन्तु अब गाँवों में भी बड़ी संख्या में लोग मोटापे से ग्रसित हैं। आंकडे बताते हैं कि पुरुषों की अपेक्षा महिलायें मोटापे की शिकार ज़्यादा हो रही हैं।

स्वास्थ्य के लिये शरीर का ज्यादा वज़नी होना बहुत नुकसानदेह होता है।

मोटापे से बहुत सारी बीमारियों की सम्भावना बढ़ जाती है, जैसे – डायबिटीज, बल्डप्रेशर, दिल और दिल से जुड़े दूसरे रोग, फैटी–लिवर, जोड़ों में दर्द, बांझपन, अल्जाइमर और कैंसर के कुछ प्रकार। पहले ये सब बीमारियां बड़ी उम्र के लोगों को होती थीं। अब मोटापे के कारण 35/40 वर्ष की उम्र में ये रोग होने लगे हैं। हर वर्ष 100 में से 63 लोगों की मृत्यु का कारण ये बीमारियां हैं। छोटे बच्चों में भी मोटापा तेज़ी से बढ़ रहा है। ये संक्रामक रोग न होकर भी उसी तरह पसर रहा है। मोटापे से होने वाले कुछ रोग असाध्य हैं। इससे जुड़े कुछ रोगों के लिये जीवनभर दवाएं खानी पड़ती हैं, परहेज़ करना पड़ता है।

मोटापे से राहत पाने के लिये इसके होने के कारण जानना बहुत ज़रूरी है। मोटापा सिर्फ खान–पान से नहीं बढ़ता। कुछ ऐसी बीमारियां हैं जिनमें वज़न बढ़ता है, जैसे – 'थायराइड,' 'क्रशिंग सिन्ड्रोम' (मांसपेशियों का एक रोग), 'आर्थराइटिस,' 'पीसीओडी' (एक हार्मोनल विकार जो महिलाओं के प्रजनन अंगों को प्रभावित करता है)। इसके अलावा कुछ दवाएं हैं जो वज़न बढ़ा सकती हैं। 'स्टेराइड,' 'डायबिटीज' और 'ब्लडप्रेशर' की कुछ दवाओं से वजन बढ़ सकता है, लेकिन इन दवाओं का मोटापे के आंकड़े बढ़ाने में कोई बड़ा योगदान नहीं है।

इस सबके अतिरिक्त एक बड़ा कारण है, जीवन शैली। यह सिर्फ बड़े शहरों तक सीमित नहीं है। छोटे शहर, गांव और दूर–दराज के क्षेत्र सब इसके शिकार होते जा रहे हैं। बाजारवाद, प्रचार और ऑनलाइन ने हर तरह के नुकसानदेह खाद्य पदार्थों को सहज सुलभ करवा दिया है। शरीर को सुचारू रूप से चलाने के लिये कुछ विटामिन और मिनरल युक्त भोजन ज़रूरी होता है। हर दिन, व्यक्ति के काम के हिसाब से शरीर को 1500 से 2000 कैलोरीज़ की ज़रूरत होती है। कम काम और ज्यादा खाने से अतिरिक्त कैलरीज़ फैट में बदलकर शरीर में जमा होने लगती हैं और इसी से व्यक्ति मोटा होने लगता है।

फास्ट फूड, डिब्बा–बंद खाना या प्रासेस्ड–फूड खूब प्रचलन में हैं, कैलरी से भरे होते हैं और पौष्टिकता से खाली। सभी जानते हैं कि सॉफ्ट–ड्रिंक चीनी और नुकसानदायक कैमिकल्स के कारण बहुत ख़तरनाक होते हैं, किन्तु फिर भी इनकी खूब पब्लिसिटी और उससे भी ज़्यादा बिक्री है। शहरी नौजवान बर्गर या पिज़्ज़ा के साथ कोल्डड्रिंक पीना शान समझते हैं। शहरों में बच्चों को बाजार के खाने की लत लग गई है।

भारत में स्कूल जाने वाले बच्चों में मोटापे का प्रतिशत 10 से 20% के बीच है। 5 से 9 वर्ष के बच्चों का मोटापे का

आंकड़ा बहुत अधिक है। राजधानी दिल्ली में बच्चों का मोटा होने का प्रतिशत देश में सबसे ज्यादा है। इस बीच थोड़ी जागरूकता देखने मिली है। बहुत से स्कूल के बच्चों ने अनाप–शनाप खाने की आदत बदलने का बीड़ा उठाया है। उन्होंने अपने स्कूल की कैंटीन में बनने वाली खाद्य सामग्री पर निगाह रखना शुरू किया है और खाने की सूची में पौष्टिक खाद्य पदार्थ शामिल करवाये हैं।

नींद की कमी भी मोटापे का एक कारण है। कम नींद से रक्त में 'लैप्टिन' हार्मोन कम हो जाता है जिससे शरीर की ऊर्जा की खपत कम हो जाती है। नतीजे में फैट जमा होने लगता है और वज़न बढ़ना शुरु हो जाता है। लगातार टीवी, मोबाइल, लेपटॉप याने 'ब्लू स्क्रीन' से शारीरिक गतिविधि का कम होना भी मोटापे का बड़ा कारण है। 'ब्लू स्क्रीन' से 'मैलाटोनिन' हार्मोन कम हो जाता है और उसके कारण नींद कम हो जाती है। कम नींद के कारण 'ग्रेलिन' हार्मोन ज्यादा होकर भूख बढ़ाता है। इससे खासकर मीठा और तला खाने की इच्छा बढ़ती है।

इसी तरह मानसिक तनाव से भी मोटापा बढ़ता है। कई लोग जब मानसिक तनाव में होते हैं तो उन्हें खूब भूख लगती है। मानसिक तनाव से शरीर में 'कार्टीसाल' हार्मोन बढ़ जाता है। इससे पेट के आसपास चर्बी जमा हो जाती है। ये फैट इंसुलिन हार्मोन के असर को कम करके डायबिटीज होने की सम्भावना बढ़ा देता है। कई बार परिवार के एक से ज्यादा सदस्य मोटे होते हैं। ये अनुवांशिक होने के साथ–साथ एक जैसी जीवन–शैली के कारण भी होता है।

कैसे करें, मोटापे पर काबू जब तक मोटे व्यक्ति को खुद यह एहसास नहीं होगा कि उसका भविष्य खतरे में है, दूसरा कोई कुछ नहीं कर सकता। बढ़ता वज़न रोकना बहुत ज़रूरी है। भविष्य में मोटापे से जीवन कितना कठिन हो सकता है इसका एहसास खुद करना पड़ेगा। अपना खान–पान बदलना होगा।

भोजन में ज्यादा प्रोटीन, फाइबर युक्त पदार्थों का समावेश करें। याने ज्यादा फल, दूध, दही, सब्जियां, अंडा, मछली और अलग–अलग तरह की दालों का उपयोग करें।

चावल, रोटी, मीठा और तली चीज़ें कम खायें। रोटी और चावल हमारे मुख्य खाद्य पदार्थ अवश्य हैं, किन्तु आधुनिक जीवन शैली में जब हमारा शारीरिक श्रम बहुत कम हो गया है, हमें रोटी–चावल की मात्रा घटाकर सब्जियों और फलों की मात्रा बढ़ानी होगी। ये काम इच्छा शक्ति से ही किया जा सकता है।

***

म.प्र: इसी माह से शुरू होगी बाघों की गणना

भारत का गौरव माने जाने वाले बाघों की गिनती एक बार फिर शुरू होने जा रही है। टाइगर स्टेट का ताज रखने वाले एमपी में बाघों की संख्या आने वाले वर्षों में नया इतिहास रच सकती है। वन विभाग के सूत्रों के अनुसार वर्ष 2026 में होने वाले टाइगर सेंसेस में प्रदेश के बाघों की संख्या 1000 से ज्यादा हो सकती है।

वर्तमान में राज्य में 785 बाघ हैं और लगातार बढ़ते सुरक्षित आवास इस अनुमान को मजबूती देते हैं। बाघों की गणना को पारदर्शी और सटीक बनाने के लिए इस बार उन्नत तकनीक का सहारा लिया जाएगा।

कैमरा ट्रैप, जीपीएस ट्रैकिंग, ड्रोन सर्वे और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआइ) आधारित ऐप के जरिए जंगल के हर हिस्से को खंगाला जाएगा। इससे पहले पचमढ़ी में आयोजित एक कार्यशाला में अधिकारियों और फील्ड स्टाफ को इन तकनीकों के उपयोग की बारीकियां सिखाई गई।

वन विभाग के एक वरिष्ठ अधिकारी का कहना है कि मध्य प्रदेश के टाइगर रिजर्व और संरक्षित क्षेत्रों में हाल के वर्षों में बाघों का संरक्षण सफल रहा है।

बेहतर निगरानी और प्राकृतिक आवास उपलब्ध कराना इस वृद्धि का सबसे बड़ा कारण है। राष्ट्रीय स्तर पर छठी बार बाघों की गणना हो रही है। इसमें मध्य प्रदेश के अलावा महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा और अन्य राज्यों के आंकड़े भी शामिल होंगे।

भारतीय वन्यजीव संस्थान और नेशनल टाइगर कंजर्वेशन अथॉरिटी इस अभियान की निगरानी करेंगे। विशेषज्ञ मानते हैं कि मौजूदा हालात यदि बने रहे तो प्रदेश में बाघों की संख्या चार अंकों में पहुंचना तय है। यह उपलब्धि न केवल मध्य प्रदेश बल्कि पूरे देश के लिए गौरव की बात होगी और वैश्विक स्तर पर भारत की पहचान और मजबूत करेगी।

एपीसीसीएफ वाइल्ड लाइफ एल. कृष्णमूर्ति ने कहा कि अक्टूबर माह में टाइगर की गणना होगी। यह गणना छह माह तक चलेगी। इसके बाद केंद्र सरकार अगले साल बाघों के संख्या के आंकड़े जारी करेगी।

देश में 25 शहरों की हवा 40 प्रतिशत तक सुधरी

वायु प्रदूषण पर पांच साल पहले तक आंखें मूंद कर बैठे रहने वाले शहरों

का सोच अब इसको लेकर बदलता दिख रहा है। वे अब न सिर्फ वायु प्रदूषण से निपटने की योजना बनाकर उस पर अमल में जुटे हुए हैं, बल्कि वायु गुणवत्ता में बदलाव की ओर भी बढ़ रहे हैं।

वर्ष 2020 में देश के जिन 130 प्रमुख शहरों का वायु प्रदूषण कम करने को लेकर राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम (एनसीएपी) की शुरुआत की गई, उसके लक्ष्य को वाराणसी, लखनऊ, कानपुर, आगरा व देहरादून जैसे 25 प्रमुख शहरों ने तय समय से पहले ही हासिल कर लिया है। दूसरे शहर भी उस दिशा में बढ़ रहे हैं।

एनसीएपी के तहत वर्ष 2025–26 तक इन शहरों को अपने यहां पीएम–10 का स्तर 2017–18 के मुकाबले 40 प्रतिशत तक कम करना है।

वन एवं पर्यावरण मंत्रालय की रिपोर्ट के मुताबिक एनसीएपी में शामिल 64 अन्य शहरों में भी 2017–18 की तुलना में पीएम–10 के स्तर में 20 प्रतिशत तक सुधार दर्ज हुआ है। वहीं अन्य 14 शहर भी ऐसे हैं, जहां वायु गुणवत्ता में सुधार आया है।

यह बात अलग है कि मेरठ, राउरकेला जैसे शहरों में वायु प्रदूषण से निपटने की योजना बन जाने के बाद भी वायु गुणवत्ता में कोई सुधार नहीं है। मंत्रालय के मुताबिक इन 130 शहरों का वायु प्रदूषण कम करने के लिए सरकार 20,130 करोड़ रुपये आवंटित करेगी। 13,237 करोड़ रुपये अब तक शहरों को दिए भी जा चुके हैं।

इसके साथ ही शहरों ने दूसरे मंत्रालयों के साथ मिलकर वायु प्रदूषण बढ़ाने वाले कारकों को भी समाप्त करने की दिशा में काम शुरू किया है। इसके तहत छोटे–छोटे उद्योगों को स्वच्छ ईंधन में शिफ्ट करने, सड़कों से उठने वाले प्रदूषण को कम करने के लिए सड़कों की मरम्मत कराने जैसे कदम उठाए गए हैं।

मंत्रालय की रिपोर्ट के मुताबिक, एनसीएपी में शामिल सभी 130 शहरों ने अपने यहां का एयर एक्शन प्लान, ग्रेडेड रिस्पांस एक्शन प्लान व जनता की शिकायतें सुनने के लिए सिस्टम तैयार कर लिया है।

54 शहरों को छोड़कर बाकी शहरों ने जमीन पर भी काम शुरू कर दिया है। इसका परिणाम भी दिखने लगा है।

अगले कुछ महीनों के भीतर सभी शहरों इसके अमल का लक्ष्य रखा गया है। मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारियों के मुताबिक बड़े शहरों में वायु प्रदूषण के खिलाफ छिड़े इस अभियान का असर छोटे शहरों में भी देखने को मिल रहा है। राज्य सरकारों ने इन शहरों के वायु प्रदूषण पर निगरानी बढ़ी दी है।

वैज्ञानिकों ने खोजा कैंसर से लड़ने का नया वैक्सीन

आज के समय में कैंसर एक बड़ी चुनौती बन चुका है। दुनियाभर में वैज्ञानिक लगातार इसकी दवा और वैक्सीन पर काम कर रहे हैं। इसी कड़ी में हाल के वर्षों में जीआरपी (ग्लूकोज रेग्यूलेटेड प्रोटिंस) आधारित वैक्सीन पर रिसर्च ने सबका ध्यान खींचा है। ये वैक्सीन कैंसर के इलाज और रोकथाम में बड़ी भूमिका निभा सकती है।

जीआरपी क्या हैं और कैसे काम करते हैं: जीआरपी हमारे शरीर में मौजूद एक खास प्रकार के प्रोटीन होते हैं। ये कोशिकाओं को तनाव (स्ट्रेस) से बचाते हैं और प्रोटीन को सही आकार देने में मदद करते हैं। लेकिन इनकी सबसे खास बात यह है कि ये हमारे इम्यून सिस्टम को सक्रिय करते हैं।

जीआरपी शरीर की प्रतिरोधक कोशिकाओं को कैंसर की पहचान करने और उसे नष्ट करने की क्षमता देते हैं। खासकर जीआरपी 94/ जीपी 96 और जीआरपी 70 को वैज्ञानिक कैंसर वैक्सीन बनाने के लिए सबसे कारगर मानते हैं।

वैज्ञानिक मानते हैं कि जीआरपी वैक्सीन को नैनोपार्टिकल्स और एडजुवेंट्स (जो इम्यून सिस्टम को और तेज करते हैं) के साथ मिलाकर और भी असरदार बनाया जा सकता है। इसके अलावा, हर मरीज के ट्यूमर से जीआरपी कॉम्प्लेक्स निकालकर पर्सनलाइज्ड वैक्सीन भी तैयार की जा सकती है।

हालांकि जीआरपी वैक्सीन काफी उम्मीद जगाती है, लेकिन अभी भी कुछ मुश्किलें सामने हैं। ट्यूमर का माइक्रो एन्वायरनमेंट कई बार इम्यून सिस्टम को कमजोर कर देता है। हर मरीज पर अलग तरह से प्रतिक्रिया करता है। बड़े पैमाने पर शुद्ध जीआरपी प्रोटीन तैयार करना तकनीक चुनौतीपूर्ण है।

फिलहाल जीआरपी आधारित वैक्सीन शोध के शुरुआती चरण में है, लेकिन अब तक के नतीजे बेहद उत्साह जनक हैं। खासकर जीआरपी 70 को कैंसर के खिलाफ सबसे मजबूत उम्मीदवार माना जा रहा है। आने वाले समय में अगर रिसर्च और क्लिनिकल ट्रायल्स सफल रहे, तो यह तकनीक कैंसर के इलाज में नई उम्मीद बन सकती है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि जीआरपी 70 बाकी सभी जीआरपी से ज्यादा असरदार है। इसकी सबसे बड़ी खासियत यह है कि यह शरीर को पूरे कैंसर एंटीजेन की जानकारी देता है, जिससे हमारी इम्यून कोशिकाएं कैंसर की पहचान करके उस पर तेजी से हमला कर सकती हैं।

यही वजह है कि जीआरपी–70 को भविष्य की कैंसर वैक्सीन के लिए सबसे बड़ा गेम चेंजर माना जा रहा है। अब तक हुए प्री–क्लिनिकल ट्रायल्स में जीआरपी आधारित वैक्सीन ने चूहों पर अच्छे नतीजे दिखाए हैं। इस वैक्सीन ने कैंसर की शुरुआत को रोका। ट्यूमर के फैलाव को कम किया। और सबसे अहम बात लंबे समय तक इम्यूनिटी (प्रतिरोधक क्षमता) बनी रही।

एलिफेंट कॉरिडोर के आर्मी कैंट में क्यूआरटी बनाई

इंसानों–जानवरों के बीच टकराव रोकने के लिए प. बंगाल में आर्मी व ग्रामीणों को हाथियों के संग रहना सिखा रहे हैं। इसके लिए क्यूआरटी (क्विक रेस्पॉन्स टीम) बन रही है। प. बंगाल में नेपाल सीमा से अलीपुरदुआर तक 14 एलिफेंट कॉरिडोर हैं, जहां 600 से ज्यादा हाथी हैं। यहीं 3 आर्मी कैंट हैं। स्नेप फाउंडेशन जवानों–ग्रामीणों को ट्रेनिंग दे रही है।

फाउंडेशन के एग्जी. डायरेक्टर कौस्तुभ चौधरी बताते हैं–2023 से हम आर्मी के साथ हाथियों से निपटने पर काम कर रहे हैं। बिनागुड़ी आर्मी कैंट में 130 जवानों को ट्रेन कर क्यूआरटी बनाई। तब से यहां एक भी मौत नहीं हुई है। अब ये प्रोजेक्ट सुकना व बेंगडूबी आर्मी कैंटों में चल रहा है। कौस्तुभ बताते हैं– आर्मी कैंट में फॉडर प्लांट यानी हाथियों को पसंद आने वाली घास, धान, गन्ना, मक्के जैसी फसलें उगाई जा रही हैं।

इन्हीं फसलों को खाने के लिए हाथी खेतों में घुसते थे, लेकिन कैंट में ही ये फसलें उगाने से हाथी यहीं से जंगल लौट रहे हैं।

पहले वे छावनी के स्टोर रूम और खेतों पर हमले करते थे। विशेषज्ञ जवानों व किसानों को ट्रेंड कर रहे है :

1. हाथी और हथिनी का स्वभाव व उनका झुंड अलग–अलग होता है। दोनों को कंट्रोल करने के तरीके भी अलग हैं।
2. कौन सा हाथी राशन और कौन खेत में जाएगा, ये समझने के लिए आने–जाने के समय, झुंड का व्यवहार समझते हैं।
3. स्कॉड व्हीकल, साइरन, सर्च लाइट्स, इंफ्रा साउंड सिस्टम और कार्बाइड पाइप से हाथी को जंगल भेजने की ट्रेनिंग दे रहे हैं।
4. आर्मी, चाय बागान मैनेजमेंट, ग्रामीण, स्थानीय प्रशासन, बिजली विभाग और वन विभाग को लेकर वाइल्ड लाइफ कोऑर्डिनेशन ग्रुप बनाया गया है। इस प्रकार के संयुक्त प्रयासों से सफलता सुनिश्चित होगी। ***

स्थानीय जैव–विविधता से धान का विकास

भारत डोगरा



धान विश्व की सबसे महत्वपूर्ण फसल है। अत: बहुराष्ट्रीय कंपनियां यह भरपूर प्रयास कर रही हैं कि उनके नियंत्रण वाली जीएम व जीन परिवर्तित फसलें चावल में भी चल निकलें। दूसरी ओर, किसानों के हित में यह है कि यहां की देशी विविधता भरी धान की किस्मों को खेतों में उगाया जाए। यह भारत के संदर्भ में तो और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत में धान की जैव–विविधता का विशाल भंडार है। इन्हें हमारे पूर्वज किसानों ने एकत्र किया परंतु बहुराष्ट्रीय कंपनियां इनसे मुनाफा कमाना चाहती हैं।

भारत के विख्यात धान वैज्ञानिक डॉ. आर. एच. रिछारिया 1960–70 के दशक में केंद्रीय धान अनुसंधान संस्थान कटक के निदेशक रहे। यहां उन्होंने देशी विविधता भरी किस्मों पर आधारित महान धान विकास कार्यक्रम तैयार किया था। लेकिन इससे पहले कि वे इसे कार्यान्वित कर पाते विदेशी किस्मों को बाहर से लाद दिया गया व डॉ. रिछारिया को अपना पद छोड़ना पड़ा। फिर भी उनके अति विशिष्ट योगदानों को देखते हुए सरकार ने बार–बार उनका परामर्श लेने की ज़रूरत समझी।

1960–70 के दशक के मध्य में विदेशी सहायता संस्थाओं और अनुसंधान केंद्रों के दबाव में भारतीय सरकार ने चावल की बौनी व रासायनिक खाद का अधिक उपयोग करने वाली किस्मों के प्रसार का निर्णय लिया। इन्हें चावल की 'अधिक उत्पादक किस्में। ' (हाई यील्डिंग वेरायटी – एच.वाय.वी.) कहा गया। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि इतनी ही या इससे अधिक उत्पादकता देने वाली देशी किस्मों को अधिक उत्पादक किस्मों की सरकारी

सूची में सम्मिलित नहीं किया गया, और विदेशी किस्मों को अधिक उत्पादकता का एकमात्र स्रोत मान लिया गया। इन्हें देश के अनेक भागों मे 'हरित क्रांति किस्में' कहा जाता है।

नीचे प्रस्तुत तालिका से स्पष्ट है कि अपेक्षाकृत कम रासायनिक खाद व अन्य खर्च के बावजूद धान उत्पादकता में वृद्धि दर हरित क्रांति या विदेशी किस्मों के प्रसार से पहले अधिक थी।

विदेशी अधिक उत्पादक किस्मों की इस विफलता के क्या कारण हैं? फरवरी 1979 में केंद्रीय धान अनुसंधान संस्थान, कटक में डॉ. रिछारिया की अध्यक्षता में हुई धान प्रजनन के ख्यात विशेषज्ञों की बैठक में इस विफलता के कुछ कारण बताए गए थे – विदेशी अधिक उत्पादक किस्मों का भारत के अधिकतर धान उत्पादन क्षेत्र के लिए अनुकूल न होना व बीमारियों व कीड़ों आदि के प्रति अधिक संवेदनशील होना। कहा गया कि 'अधिकतर एच.वाय.वी. टी.एन.(1) या आई.आर.(8) से व्युत्पादित है व इस कारण उनमें बौना करने का डी.जी.ओ.वू. जेन का जीन है।

इस संकीर्ण आनुवंशिक आधार से भयप्रद एकरूपता उत्पन्न हो गई है, इसी कारण विनाशक जंतुओं (कीट आदि) व बीमारियों के प्रति संवेदनशीलता भी बढ़ी है। प्रसारित की गई अधिकतर किस्में प्रारूपी उच्च भूमि व निम्न भूमि (टिपिकल अपलैंड्स एंड लोलैंड्स), जो देश में कुल चावल क्षेत्र का लगभग 75 प्रतिशत हिस्सा है, के लिए अनुकूल नहीं है। इन स्थितियों में सफलता के लिए हमें अपने अनुसंधान कार्यक्रमों व रणनीतियों को पुन:उन्मुख करने की आवश्यकता है।

एक अन्य स्थान पर इसी टास्क फोर्स ने कहा है, 'भारत में जारी की गई विभिन्न धान की किस्मों की वंशावली को सरसरी निगाह से देखने से ही स्पष्ट हो जाता है कि जनन द्रव्य का आधार बहुत संकीर्ण है।'

नई किस्मों की विनाशक जंतुओं (पेस्ट) के प्रति बढ़ती संवेदनशीलता के विषय में टास्क फोर्स ने कहा है, ङ्गएच.वाय.वी. के आगमन से गालमिज, भूरे फुदके (ब्राऊन प्लांटहॉपर), पत्ती मोड़ने वाले कीड़े (लीफ फोल्डर) वोर्ल मैगट जैसे विनाशक कीटों की स्थिति में उल्लेखनीय तब्दीली आई है। चूंकि अब तक जारी की गई अधिकतर एच.वा.वी. मुख्य विनाशक जंतुओं के प्रति संवेदनशील है, 30 से 100 प्रतिशत तक फसल की हानि होने की संभावना रहती है।

उत्पादकता को स्थायित्व प्रदान करने के लिए अंतर्निहित प्रतिरोध (बिल्ट इन रज़िस्टेंस) वाली किस्मों का विकास

अति आवश्यक हो गया है।' किंतु प्रतिरोधक किस्मों के विकास का पिछला रिकार्ड तो कतई उत्साहवर्द्धक नहीं रहा है, जैसा कि टास्क फोर्स ने स्वीकार किया, 'कीट प्रतिरोधक प्रजनन कार्यक्रम के परिणाम अभी तक उत्साहपूर्वक नहीं रहे हैं।

हालांकि विनाशक जंतुओं की प्रतिरोधी कुछ किस्में जारी की गई हैं लेकिन रत्न के अलावा इनमें से किसी का भी अच्छा प्रसार नहीं हुआ है। रत्न का भी अच्छा प्रसार वेधकों के प्रति इसकी सहनशील प्रकृति के कारण नहीं अपितु इसके अच्छे दाने, तैयार होने की कम अवधि व व्यापक अनुकूलनशीलता के कारण हुआ है।'

'गालमिज के लिए हालांकि बहुत सारे प्रतिरोधक दाता मिले हैं, पर अभी तक देश में जारी की गई अधिकतर प्रतिरोधक किस्में या तो कम उत्पादक हैं अथवा विभिन्न स्थानों पर उगाये जाने पर, प्रतिरोध में एकरूपता नहीं दिखाती हैं। यहां भी ऊंची उत्पादकता व अधिक स्थायी प्रतिरोध के मिलन को प्राप्त नहीं किया जा सका है।'

टास्क फोर्स के इन उद्धरणों में हम इतना ही जोड़ना चाहेंगे कि एच.वाय.वी. की ये समस्यायें अभी तक बनी हुई हैं। इसके साथ यह भी जोड़ देना उचित है कि कम साधनों वाले छोटे किसानों के लिए ये किस्में विशेष रूप से समस्याप्रद है। इन किस्मों के आगमन के बाद धान उत्पादन का अधिक बड़ा हिस्सा अपेक्षाकृत समृद्ध क्षेत्रों व अपेक्षाकृत समृद्ध किसानों के खेतों से प्राप्त होने लगा है, क्षेत्रीय व व्यक्तिगत विषमताएं बढ़ी है।

जब धान के संदर्भ में सरकार द्वारा बहुप्रचारित हरित क्रांति की विफलता सामने आने लगी और रासायनिक खाद व कीटनाशकों पर अत्यधिक निर्भरता हानिकारक सिद्ध होने लगी तो देश की इस सबसे महत्वपूर्ण फसल के बारे में चिंतित सरकार को वर्षों से उपेक्षित इस महान कृषि वैज्ञानिक की याद आई। तब वर्ष 1983 में श्रीमती इंदिरा गांधी के कार्यकाल में प्रधानमंत्री कार्यालय ने उन्हें धान उत्पादन बढ़ाने के लिए एक कार्ययोजना बनाने का आग्रह किया। डॉ. रिछारिया ने ऐसी कार्य योजना तैयार की, पर श्रीमती इंदिरा गांधी की दुर्भाग्यपूर्ण हत्या के बाद यह दस्तावेज भी उपेक्षित रह गया।

डॉ. रिछारिया की कार्य योजना के शब्दों में, ङ्गमुख्य समस्या अनचाही नई चावल किस्मों को जल्दबाज़ी में जारी करना है। हमने देसी ऊंची उत्पादकता की

किस्मों को नकार कर बौनी (विदेशी) एच.वाय.वी. किस्मों के आधार पर अपनी रणनीति निर्धारित की। हम सूखे की स्थिति को भी भूल गए, जब इन विदेशी एच.वाय.वी. में उत्पादकता गिरती है। अधिक सिंचाई व पानी में उगाई जाने पर ये किस्में बीमारियों व नाशक जीवों के प्रति संवेदनशील रहती हैं, जिनका नियंत्रण आसान नहीं है व इस कारण भी उत्पादकता घटती है।' निष्कर्ष में डॉ. रिछारिया कहते हैं, कि जब नींव ही कमज़ोर है (विदेशी जनन द्रव्य) तो इस पर बना भवन ढहेगा ही।

योजना में एक अन्य स्थान पर उन्होंने लिखा है, 'धान में विफलता का सबसे महत्वपूर्ण व नज़दीकी कारण किसी क्षेत्र में पूरी तरह या आंशिक तौर पर धान की किस्मों का बार-बार (या जल्दी-जल्दी) बदलना है। यह इस कारण है क्योंकि पर्यावरण में पहले के जनन द्रव्य के संदर्भ में जो कृषि पारिस्थितकी संतुलन शताब्दियों तक अनुभवजन्य प्रजनन व चयन की प्राकृतिक प्रक्रिया में बन गया था, वह अस्त-व्यस्त हो जाता है।'

सौभाग्यवश, देसी अधिक उत्पादकता की किस्में, जो स्थानीय पर्यावरण के अनुकूल हैं, देश में उपलब्ध हैं। 1971-74 के दौरान मध्य प्रदेश में किए गए एक सर्वेक्षण से पता चला था कि देसी किस्मों में से 8 प्रतिशत अधिक उत्पादकता की किस्में हैं अथवा उनकी उत्पादकता 3705 किलोग्राम धान प्रति हैक्टर से अधिक है।

इसे ध्यान में रखते हुए एच.वाय.वी. को पुनः परिभाषित करना आवश्यक है, क्योंकि अब तक सरकारी स्तर पर उनकी पहचान विदेशी, बौनी, अधिक रासायनिक खाद की खपत करने वाली किस्मों के संदर्भ में ही की गई है।

अनुसंधान व प्रसार दोनों क्षेत्रों में डॉ. रिछारिया अधिकाधिक विकेंद्रीकरण को महत्व देते हैं। यह धान के पौधों की अपनी विशिष्टताओं के कारण भी अनिवार्य है। उनके शब्दों में, 'करोड़ों को भोजन देने वाले चावल के पौधों की यदि सबसे महत्वपूर्ण विशेषता बतानी हो तो यह इसकी (भारत व अन्य चावल उत्पादक क्षेत्रों में फैली) हज़ारों किस्मों में ज़ाहिर विविधता है।'

अतः उन्होंने धान उगाने वाले पूरे क्षेत्र में 'अनुकूलन धान केंद्रों' का एक जाल-सा बिछा देने का सुझाव दिया। 'अनुकूलन धान केंद्र अपने क्षेत्र से एकत्र सभी स्थानीय धान की किस्मों के अभिरक्षक होंगे। भविष्य को सुरक्षित बनाने के लिए उन्हें अपने प्राकृतिक माहौल में ही जीवित रखा जाएगा।'

इन केंद्रों के कार्य ये होंगे : (क) चावल के विकसित जेनेटिक संसाधनों को

भविष्य के अध्ययनों के लिए उपलब्ध कराना – इसे इसके मूल रूप में भारत या बाहर के किसी केंद्रीय स्थान पर सुरक्षित रखना तो लगभग असंभव है। इसे इसके मूल रूप में तो किसानों के सहयोग से इसके प्राकृतिक माहौल में ही सुरक्षित रखा जा सकता है।

(ख) युवा किसानों को अपनी आनुवंशिक सम्पदा के मूल्य व महत्व के विषय में शिक्षित/जागरूक करना व उनमें किस्मों का पता लगाने, एकत्र करने के प्रति रुचि जागृत करना।

अपने विस्तृत अनुभव के आधार पर डॉ. रिछारिया बताते हैं कि धान क्षेत्रों में मुझे ऐसे किसान मिलते ही रहे हैं जो धान की अपनी स्थानीय किस्मों में गहन रुचि लेते हैं व अलग–अलग किस्मों की उपयोगिता, यहां तक कि उसका इतिहास बता सकते है। इन केंद्रों की ज़िम्मेदारी ऐसे चुने हुए, प्रतिबद्ध किसानों को सौंपी जाएगी। हज़ारों किस्मों की पहचान करने, उन्हें सुरक्षित रखने की उनकी जन्मजात प्रतिभा का लाभ वर्तमान व भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उठाना चाहिए।

ऊपर बताए गए रास्ते को अपनाने में देर नहीं करनी चाहिए क्योंकि डॉ. रिछारिया ने यह चेतावनी भी दी थी कि जिस तरह विदेशी बौनी किस्मों को फैलाने व स्थानीय किस्मों को गायब करने के प्रयास चल रहे है उसके चलते शायद हमारी यह विरासत भी भविष्य में हमें उपलब्ध न रहे। ***

तीन वैज्ञानिकों को चिकित्सा का नोबल

साल 2025 का मेडिसिन नोबेल पुरस्कार मैरी ई. ब्रंकॉ, फ्रेड राम्सडेल और शिमोन साकागुची को मिला है। इन्हें यह पुरस्कार पेरीफेरल इम्यून टॉलरेंस के क्षेत्र में की गई खोज के लिए दिया गया है।

इसमें उन्होंने खोज की है कि शरीर के शक्तिशाली प्रतिरक्षा तंत्र को कैसे नियंत्रित किया जाता है, ताकि यह गलती से हमारे अपने अंगों पर हमला न करे। दरअसल, हमारा प्रतिरक्षा तंत्र हर दिन हजारों–लाखों सूक्ष्मजीवों से हमारी रक्षा करता है। ये सभी सूक्ष्मजीव अलग–अलग दिखते हैं। कई ने तो अपने आप को मानव कोशिकाओं जैसा दिखाने की क्षमता विकसित कर ली है, जिससे प्रतिरक्षा तंत्र को यह पहचानना मुश्किल हो जाता है कि हमला किस पर करना है और किसकी रक्षा करनी है। चूहे में म्यूटेशन का पता राम्सडेल ने 2001 में पता लगाया कि एक चूहे की नस्ल ऑटोइम्यून रोगों के लिए विशेष रूप से संवेदनशील क्यों थी।

बीजों से सुधरेगी सेहत

डॉ. रामानुज पाठक



मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता है – रोटी, कपड़ा और मकान। रोटी अर्थात 'भोजन' भोजन केवल भूख मिटाने का साधन नहीं, बल्कि जीवन शक्ति और स्वास्थ्य का आधार भी है। सभ्यता के विकास के प्रारंभिक चरण से ही मनुष्य ने बीजों का उपयोग किया है। अन्न , फल, सब्जियां हमारी थाली तक पहुंचती हैं तो उनके केंद्र में बीज ही होते हैं।

बीज केवल पौधों के जन्म का आधार नहीं हैं, बल्कि यह पोषण और औषधीय गुणों का भी भंडार हैं।बीज वह सूक्ष्म इकाई है जिसमें एक नए जीवन का अंकुर छिपा होता है। यही कारण है कि बीजों को केवल कृषि का स्रोत न मानकर इन्हें पोषण, ऊर्जा और औषधीय गुणों का खज़ाना माना गया है।

भोजन केवल भूख मिटाने का साधन नहीं, बल्कि जीवन शक्ति और स्वास्थ्य का आधार भी है। सभ्यता के विकास के प्रारंभिक चरण से ही मनुष्य ने बीजों का उपयोग किया है।

आयुर्वेद में बीजों को 'अन्न और औषधि दोनों' की संज्ञा दी गई है। वहीं आधुनिक विज्ञान ने अपने शोधों से यह सिद्ध किया है कि अधिकांश बीजों में प्रोटीन, आवश्यक अमीनो अम्ल, ओमेगा फैटी एसिड, विटामिन, मिनरल्स और एंटीऑक्सीडेंट्स भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं। यही कारण है कि आजकल बीजों को 'सुपरफूड' के रूप में विश्वभर में लोकप्रियता मिल रही है।

वर्तमान युग में जब जीवनशैली–जनित रोग (Lifestyle Diseases) जैसे मधुमेह, मोटापा, हृदय रोग, थायरॉयड और कैंसर तेजी से बढ़ रहे हैं, तब इन बीजों का नियमित और संतुलित सेवन एक प्राकृतिक, सुरक्षित और किफायती

विकल्प हो सकता है। बीज न केवल शारीरिक स्वास्थ्य को मजबूत करते हैं बल्कि मानसिक संतुलन और भावनात्मक स्थिरता में भी सहायक सिद्ध होते हैं।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के साथ–साथ आयुर्वेद, यूनानी और सिद्ध चिकित्सा पद्धतियों में भी बीजों के स्वास्थ्यवर्धक महत्व का उल्लेख मिलता है। छोटे–से दाने के भीतर छिपी यह ऊर्जा वास्तव में मानव शरीर के लिए वरदान है।

आज विज्ञान ने सिद्ध किया है कि अधिकांश बीजों में प्रोटीन, फाइबर, विटामिन, मिनरल्स, ओमेगा फैटी एसिड और एंटीऑक्सीडेंट्स प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो शरीर को रोगों से लड़ने और लंबे समय तक स्वस्थ बने रहने में मदद करते हैं।

1. कलौंजी के बीज (Black Seed)

कलौंजी या निगेला सतीवा का उल्लेख आयुर्वेद और इस्लामिक चिकित्सा दोनों में मिलता है। इसे 'हर मर्ज़ की दवा' भी कहा जाता है।

वैज्ञानिक तथ्य: इसमें थाइमोक्विनोन पाया जाता है, जो एंटी–इन्फ्लेमेटरी और एंटीऑक्सीडेंट गुणों से भरपूर है।

लाभ : गठिया और जोड़ों के दर्द में राहत। डायबिटीज रोगियों के लिए रक्त शर्करा नियंत्रण। श्वसन तंत्र की बीमारियों (दमा, खाँसी) में सहायक। इम्यूनिटी बढ़ाने में कारगर।

2. चिया बीज (Chia Seeds)

मेक्सिको से उत्पन्न यह बीज आज सुपरफूड कहलाता है। छोटे आकार का यह बीज शरीर के लिए बड़ी शक्ति का स्रोत है।

पोषण संरचना : ओमेगा–3 फैटी एसिड, प्रोटीन और फाइबर से भरपूर। कैल्शियम और मैग्नीशियम की अच्छी मात्रा।

लाभ : पाचन तंत्र को मजबूत करता है। लंबे समय तक पेट भरा रखने से वजन नियंत्रण।

हृदय रोगों के खतरे को कम करता है। मानसिक एकाग्रता और ऊर्जा को बढ़ाता है।

3. कद्दू के बीज (Pumkin Seeds)

कद्दू के बीज 'सुपर न्यूट्रिएंट्स' का भंडार माने जाते हैं।

पोषण तत्व: मैग्नीशियम, जिंक, फॉस्फोरस और हेल्दी फैट्स।

लाभ: हृदय स्वास्थ्य के लिए उत्कृष्ट। पुरुषों में टेस्टोस्टेरोन स्तर को प्राकृतिक रूप से बढ़ाता है। अनिद्रा की समस्या में सहायक (क्योंकि इसमें ट्रिप्टोफैन पाया जाता है)। प्रोस्टेट ग्रंथि से जुड़ी समस्याओं को रोकने में सहायक।

4. अलसी के बीज (Flax seeds)

भारत में अलसी का उपयोग प्राचीन काल से औषधि और भोजन दोनों में होता आया

है।

वैज्ञानिक तत्व: इसमें लिग्नान और ओमेगा–3 फैटी एसिड की भरपूर मात्रा होती है।

लाभ: हार्ट अटैक और स्ट्रोक का खतरा कम करता है। हार्मोन संतुलन में मददगार, विशेषकर महिलाओं के लिए। पाचन तंत्र को सुचारु करता है। त्वचा और बालों की सुंदरता को बढ़ाता है।

5. तिल के बीज (Sesame Seeds)

भारतीय संस्कृति में तिल का धार्मिक और पोषणीय दोनों महत्व है।

पोषण: कैल्शियम, आयरन, मैग्नीशियम और जिंक से भरपूर।

लाभ: हड्डियों और दाँतों को मजबूत बनाता है।त्वचा और बालों की प्राकृतिक चमक को बनाए रखता है। हृदय स्वास्थ्य के लिए लाभकारी। सर्दियों में ऊर्जा और गर्माहट प्रदान करता है।

6. भांग के बीज (Hem Seeds)

भांग के बीज को अक्सर भ्रमित दृष्टि से देखा जाता है, परंतु इनके औषधीय और पोषणीय गुण अद्वितीय हैं।

वैज्ञानिक तथ्य: इसमें ओमेगा–3 और ओमेगा–6 फैटी एसिड का अनुपात आदर्श माना जाता है।

लाभ: मस्तिष्क को सक्रिय और ऊर्जावान बनाते हैं। मांसपेशियों की रिकवरी और वृद्धि में सहायक। नींद और मूड को संतुलित करते हैं। रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं।

7. हालिम बीज (Garden Cress Seeds) हालिम या अलिव बीज का महत्व विशेष रूप से महिलाओं के स्वास्थ्य से जुड़ा हुआ है।

पोषण तत्व: आयरन, फोलेट और विटामिन उ से भरपूर।

लाभ: एनीमिया दूर करने में सहायक। हार्मोन संतुलन में मदद करता है। प्रसवोत्तर महिलाओं के लिए विशेष रूप से उपयोगी। हड्डियों और प्रतिरक्षा तंत्र को मजबूत करता है।

8. सूरजमुखी के बीज (Sunflower Seeds) : सूरजमुखी केवल सौंदर्य का प्रतीक नहीं, बल्कि इसके बीज पोषण का खज़ाना हैं।

पोषण: विटामिन ए, सेलेनियम और मैग्नीशियम।

लाभ: त्वचा को जवां और स्वस्थ बनाए रखता है। बालों की जड़ों को पोषण देता है। हृदय को स्वस्थ और कोलेस्ट्रॉल को नियंत्रित करता है। एंटीऑक्सीडेंट गुणों से उम्र बढ़ने की प्रक्रिया को धीमा करता है।

आधुनिक शोधों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि बीजों में उपस्थित फाइटोन्यूट्रिएंट्स, पॉलीअनसेचुरेटेड फैटी एसिड और माइक्रोन्यूट्रिएंट्स हमारे

शरीर को ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस से बचाते हैं। इसके कारण हृदय रोग, डायबिटीज, कैंसर और अल्जाइमर जैसी बीमारियों का खतरा कम होता है। यद्यपि बीजों के उपयोग करते कुछ बेहतर सावधानियां भी रखनी चाहिए।बीजों का सेवन संतुलित मात्रा में ही करें। अधिक मात्रा में सेवन करने से पाचन संबंधी समस्याएँ हो सकती हैं।

गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं को चिकित्सक की सलाह से ही इनका उपयोग करना चाहिए।

बीजों को भिगोकर, भूनकर या स्मूदी/सलाद में मिलाकर खाया जा सकता है।बीज प्रकृति की अद्भुत देन हैं। इनमें जीवन की निरंतरता का रहस्य भी छिपा है और स्वास्थ्य का खज़ाना भी।

हर बीज में विशिष्ट पोषक तत्व और औषधीय गुण पाए जाते हैं, जो शरीर को रोगों से लड़ने, अंगों को पोषण देने और मन को सशक्त बनाने का सामर्थ्य रखते हैं।

जहाँ कलौंजी रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक है, वहीं चिया और अलसी के बीज हृदय स्वास्थ्य को सुरक्षित रखते हैं। कद्दू और भांग के बीज हार्मोन और मांसपेशियों के लिए उपयोगी हैं, जबकि तिल और सूरजमुखी के बीज हड्डियों, त्वचा और बालों को मज़बूत बनाते हैं। हालिम बीज रक्त और हार्मोन संतुलन के लिए अद्वितीय हैं।

आधुनिक विज्ञान भी यह स्वीकार कर चुका है कि बीजों में पाए जाने वाले फाइटोन्यूट्रिएंट्स, ओमेगा फैटी एसिड और माइक्रोन्यूट्रिएंट्स हमारे शरीर को ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस और जीवनशैली–जनित रोगों से बचाते हैं। इनका नियमित सेवन न केवल रोग–निवारण बल्कि दीर्घकालिक स्वास्थ्य संवर्धन का साधन है।

बीजों का सेवन यदि संतुलित मात्रा में और उचित रूप से किया जाए तो यह हमें औषधियों पर निर्भर हुए बिना, एक प्राकृतिक और स्थायी स्वास्थ्य पद्धति प्रदान कर सकते हैं।

बीज वास्तव में प्रकृति के अद्भुत खज़ाने हैं। इनमें मौजूद सूक्ष्म पोषक तत्व हमारे शरीर को न केवल रोगों से बचाते हैं, बल्कि जीवन शक्ति और सौंदर्य को भी बनाए रखते हैं। आधुनिक युग की भागदौड़ और जंक फूड संस्कृति में बीजों का सेवन हमारे लिए एक सरल, सुरक्षित और प्राकृतिक उपाय है, जो हमें शारीरिक और मानसिक दोनों रूप से स्वस्थ रख सकता है।

बीज छोटे ज़रूर हैं, पर इनकी शक्ति अपार है। 'बीज छोटे हैं, परंतु स्वास्थ्य और जीवन शक्ति में इनकी भूमिका असीमित है।' ***

मधुमक्खियों का अनोखा भोजन संतुलन



जंगली मधुमक्खियां यूं ही किसी भी फूल पर नहीं जातीं। एक नए अध्ययन से पता चला है कि ये नन्हे परागणकर्ता अलग-अलग फूल चुनकर अपने भोजन में प्रोटीन, वसा और कार्बोहाइड्रेट का संतुलन बनाए रखते हैं। ठीक वैसे ही जैसे इंसान कभी भरपेट खाना पसंद करते हैं तो कभी हल्का-फुल्का; जैसे सलाद।

यह शोध आठ साल तक अमेरिका के कोलोराडो रॉकीज़ पहाड़ों में किया गया, जहां वैज्ञानिकों ने आठ तरह की मधुमक्खियों पर अध्ययन किया। इन मधुमक्खियों द्वारा इकट्ठा किए गए पराग का विश्लेषण कर उन्होंने एक 'पोषण मानचित्र' बनाया, जिससे पता चला कि मधुमक्खियां कैसे और क्यों अलग-अलग फूल चुनती हैं।

कुछ फूलों के पराग में सिर्फ 17 प्रतिशत प्रोटीन था, जबकि कुछ में 86 प्रतिशत तक प्रोटीन पाया गया। मौसम का असर भी साफ दिखा: वसंत के फूलों में प्रोटीन ज़्यादा था, जबकि गर्मी के अंत में मिलने वाले फूलों में वसा और कार्बोहाइड्रेट अधिक थे। यही मौसमी बदलाव तय करता है कि मधुमक्खियां किस समय कौन-सा भोजन चुनेंगी।

इस अध्ययन से यह भी पता चला कि मधुमक्खियों की अलग-अलग प्रजातियां अपने शरीर के आकार और जीभ की लंबाई के आधार पर अलग-अलग भोजन रणनीति अपनाती हैं। बड़ी और लंबी जीभ वाली मधुमक्खियां ज़्यादा प्रोटीन वाले पराग चुनती हैं, जबकि छोटी मधुमक्खियां कार्बोहाइड्रेट और वसा वाला पराग पसंद करती हैं। इसके अलावा, अलग-अलग मधुमक्खियां अपनी कॉलोनी के विकास की अवस्था के हिसाब से भी भोजन बदलती हैं।

इस अध्ययन के मुख्य शोधकर्ता जस्टिन बैन के अनुसार पराग में यह विविधता वैसी ही है जैसी इंसानों के खाने में होती है। यानी मधुमक्खियों को भी इंसानों की तरह संतुलित आहार चाहिए।

हालांकि यह अध्ययन पथरीले पर्वतीय स्थल पर हुआ है, लेकिन यह दुनिया भर में परागणकर्ताओं की पोषण ज़रूरतों को समझने के लिए उपयोगी है। सबसे अहम बात यह है कि मधुमक्खियों के लिए एक जैसा भोजन काम नहीं करता – उनके लिए फूलों की विविधता ज़रूरी है ताकि उनकी आबादी स्वस्थ बनी रहे।

बागवान और संरक्षणकर्ता इस जानकारी के आधार पर ऐसे बगीचे और प्राकृतवास बना सकते हैं जो साल भर मधुमक्खियों की बदलती पोषण ज़रूरतों को पूरा करें।

आज परागण करने वाले कीट जलवायु परिवर्तन, प्राकृतवास के नष्ट होने और पोषण की कमी जैसी बड़ी चुनौतियों से जूझ रहे हैं। ऐसे में यह अध्ययन बताता है कि विविधता बनाए रखना कितना ज़रूरी है।

क्या सूरज की ऊर्जा से उड़ान संभव है?



कल्पना कीजिए एक धातु की चादर की जो मात्र प्रकाश की शक्ति से उड़ती जा रही है। कल्पना की उड़ान थोड़ी ज़्यादा ही लगती है लेकिन वैज्ञानिकों ने हथेली की साइज़ की एक छिद्रमय झिल्ली बनाई है जो ऊपरी वायुमंडल में लगातार उड़ती रह सकती है। इसकी उड़ान का राज़ है इसकी दोनों सतहों पर तापमान का अंतर। इसका खुलासा नेचर के हालिया अंक में किया गया है।

दरअसल, हारवर्ड विश्वविद्यालय के मटेरियल्स इंजीनियर बेन शेफर ऐसे उपकरण की तलाश में थे जो पृथ्वी के वायुमंडल के 50 से 80 किलोमीटर ऊंचाई वाले हिस्से की तहकीकात कर सके। इस परत को मीसोस्फीयर (मध्यमंडल) कहते

हैं। मीसोस्फीयर में वायुमंडल इतना घना है कि वहां कृत्रिम उपग्रह नहीं रह सकते लेकिन इतना घना भी नहीं है कि हवाई जहाज़ उड़ सकें।

कुछ साल पहले पेनसिल्वेनिया विश्वविद्यालय के इंजीनियर आइगॉर बार्गेटिन के दल ने इस समस्या के समाधान के लिए एक विचार प्रस्तुत किया था। इसमें फोटोफोरेसिस नामक एक भौतिक प्रभाव के उपयोग की बात थी।

पोटोफोरेसिस का मतलब होता है प्रकाश–प्रेरित गति। इसका सबसे बढ़िया प्रदर्शन क्रुक्स रेडियोमीटर में दिखता है। कांच के एक खोखले गोले में लगभग निर्वात की स्थिति पैदा की जाती है और अंदर एक चकरी लगी होती है, जिसकी चारों भुजाओं पर एक पतली चादर लगी होती है।

इनके आसपास प्रकाश के ज़रिए तापमान में फर्क पैदा करने पर चकरी को घुमाने के लिए पर्याप्त बल मिल जाता है। बार्गेटिन ने बताया था कि उन्होंने ऐसे फोटोफोरेटिक उड़ान में समर्थ एक छोटा–सा यंत्र बना लिया है। लेकिन वह बहुत ही छोटा था।

शेफर की टीम ने जो यंत्र बनाया है उसमें एल्युमिनियम ऑक्साइड की दो छिद्रित चादरों को बीच में खूंटे लगाकर आपस में जोड़ दिया गया है। ये दोहरी चादरें एक ओर प्रकाश अवशोषित करती हैं जबकि दूसरी सतह से उसे उत्सर्जित कर देती हैं। इसके चलते तापमान में जो अंतर पैदा होता है वह ऊपरी वायुमंडल में विरल हवा में धाराएं उत्पन्न कर सकता है और यंत्र तैरता रहता है। लगता है कि मीसोस्फीयर इसकी उड़ान के लिए अनुकूल है; वहां सूर्य की रोशनी पर्याप्त होती है तथा हवा भी एकदम सही मात्रा में है।

अभी तो टीम ने इसे प्रयोगशाला में मीसोस्फीयर जैसा वातावरण तैयार करके आज़माया है। अभी उनके यंत्र का व्यास करीब 6 से.मी. है। टीम का कहना है कि उनका यंत्र ध्रुवीय अक्षांशों पर तो दिन–रात काम कर सकता है लेकिन भूमध्य रेखा के आसपास सिर्फ दिन में।

फिलहाल यह यंत्र मात्र 10 मिलीग्राम का वज़न ढो सकता है। फिर भी बताते हैं कि यह लघु दूरसंचार व्यवस्था, जलवायु संवेदी यंत्रों और छोटे सौर पैनल के लिए पर्याप्त होगा। हज़ारों ऐसे यंत्र उड़ाए जाएं तो मौसम भविष्यवाणी में सहायक हो सकते हैं। विचार तो इन्हें मंगल के अवलोकन के लिए भेजने का भी है। यह प्रारंभिक अवस्था है धीरे–धीरे इस दिशा में गहन शोध अध्ययन के बाद किसी प्रकार का प्रभावी कदम उठाने का निर्णय लिया जाएगा। ***

क्या सबका मस्तिष्क रंगों को एक ही तरह से देखता है?



यह तो हम जानते हैं कि भाषा, संस्कृति, अनुभव और वर्णांधता के चलते विभिन्न लोग रंगों को अलग तरह से देखते-समझते हैं। हरियाली से घिरे परिवेश में रहने वालों के पास शायद हरे की हर छटा के लिए अलग-अलग नाम हों, लेकिन किसी और के पास सभी हरे के लिए सिर्फ एक ही नाम हो - हरा। लेकिन क्या सभी के मस्तिष्क रंगों को अलग- अलग तरह से प्रोसेस करते हैं, या एक ही तरह से?

जर्मनी के ट्यूबिंगन विश्व विद्यालय में संज्ञान तंत्रिका विज्ञानी एंड्रियास बार्टेल्स और उनके साथी माइकल बैनर्ट यह जानना चाहते थे कि मस्तिष्क के दृष्टि से सम्बंधित हिस्सों में विभिन्न रंग कैसे निरूपित होते हैं, और लोगों के बीच इसमें कितनी एकरूपता है। इसके लिए उन्होंने 15 प्रतिभागियों को विभिन्न रंग दिखाए और उस समय उनकी मस्तिष्क गतिविधि को फंक्शनल मैग्नेटिक रिज़ोनेन्स इमेज़िंग की मदद से रिकॉर्ड किया। फिर उन्होंने मस्तिष्क गतिविधि का एक नक्शा बनाया, जिसे देखकर अंदाज़ा मिलता था कि प्रत्येक रंग देखने पर मस्तिष्क के कौन से हिस्से सक्रिय होते हैं।

इन आंकड़ों से उन्होंने मशीन-लर्निंग मॉडल को प्रशिक्षित किया, और इसकी मदद से उन्होंने एक अन्य समूह की मस्तिष्क गतिविधि के रिकॉर्ड देखकर अनुमान लगाया कि प्रतिभागियों ने कौन से रंग देखे होंगे।

अधिकांश अनुमान सही निकले। देखा गया कि दृश्य से जुड़े अलग-अलग रंगों को मस्तिष्क के एक ही क्षेत्र के अलग-अलग हिस्सों में प्रोसेस किया जाता हैं, और विभिन्न रंगों के लिए अलग-अलग मस्तिष्क कोशिकाएं प्रतिक्रिया करती हैं। ***

हिमाचल क्षेत्र में बढ़ते खतरे

कुलभूषण उपमन्यु



विकास सूचकांक में आगे हिमाचल प्रदेश गत वर्षों में लगातार प्राकृतिक आपदाओं से घिरता जा रहा है। बादल फटने की घटनाएं लगातार बढ़ती जा रही हैं। जहां 2018 में बादल फटने की 21 घटनाएं हुई, वहीं 2019 में 16, '20 में 3, '21 में 30, '22 में 39, '23 में 65 और 2024 में 57 घटनाएं हुई।

अभी बरसात के आरंभिक चरण में ही 14 से ज्यादा जगह बादल फटा है और 69 लोग अकाल मृत्यु का ग्रास बन चुके हैं। अभी असली बरसात तो शेष है। आगे क्या होगा, यह सोचकर ही दिल दहल जाता है।

क्या कारण है कि प्रकृति हिमाचल प्रदेश पर इतनी नाराज है, जबकि उत्तराखंड का हाल भी अच्छा नहीं है। इसका अर्थ हुआ कि हिमालय में सब जगह ही प्रकृति क्रुद्ध हो चुकी है।

बादल फटने की घटना का अर्थ है - एक छोटे 20-30 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में बादलों का सघन होकर एक घंटे में 10 सेंटीमीटर से ज्यादा बारिश हो जाना। मंडी में दुर्घटना वाले दिन 21 सेंटीमीटर से ज्यादा बारिश रिकॉर्ड हुई है। इससे भीषण बाढ़ और भूस्खलन की स्थितियां बन गई। जाहिर है, ये घटनाएं वैश्विक तापमान वृद्धि के कारण हो रही हैं।

चिंता की बात यह है कि हिमालय में औसत से ज्यादा तापमान वृद्धि हुई है। इसी कारण लगातार हिमाचल प्रदेश में बादल फटने की घटनाएं साल-दर-साल बढती जा रही हैं।

हिमाचल प्रदेश में ढांचागत विकास और बड़ी परियोजनाओं के लिए

बड़े पैमाने पर वनभूमियों का भूमि उपयोग बदला गया है, वन–संपदा घटी है और तोड़–फोड़ बढ़ी है। इसके चलते हिमालय की नाजुक धरती भारी बारिश का दबाव न झेल सकने के कारण भूस्खलन का शिकार हो रही है और अभूतपूर्व तबाही का कारण बन रही है। चीन और अमेरिका के बाद भारत तीसरा सबसे बड़ा वायु–प्रदूषणकर्ता देश बन गया है जिसके 'ग्रीन– हाउस' प्रभाव के कारण तापमान में वृद्धि हो रही है।

हिमालय में औसत से ज्यादा तापमान–वृद्धि पर्यटन और अन्य कारणों से बढ़ती परिवहन की भीड़ के कारण पैदा हुए प्रदूषण से हो रही है। पहाड़ों की संकरी घाटियों में प्रदूषित वायु अटक जाती है और शायद यह भी तापमान बढ़ने का कारक हो सकता है।

हिमाचल प्रदेश के बांधों में बहकर आने वाला मलबा अपने साथ जैविक पदार्थ भी लाता है, जो झीलों के तल में बैठ जाते हैं। ये जैविक पदार्थ जब बिना आक्सीजन के सड़ते हैं तो मीथेन गैस पैदा होती है। मीथेन कार्बन डाई–आक्साइड की तुलना में 28 से 64 गुना ज्यादा 'ग्रीन हॉउस' प्रभाव पैदा करती है। यह भी औसत से ज्यादा तापमान वृद्धि का कारण हो सकता है। इस मुद्दे को गहन वैज्ञानिक शोध की जरूरत है।

अमेरिकी लेखक पीटर ब्रेविट ने अपनी पुस्तक 'सेम रिवर ट्विस' में बांध की झीलों से जैविक पदार्थों के आक्सीजन–रहित अपघटन से मीथेन गैस पैदा होने की पुष्टि की है।

इसके चलते ही अमेरिका में वर्जीनिया की रेपानहौक नदी पर अम्ब्रे बांध को हटाया गया था और नतीजे में मीथेन उत्सर्जन में कमी दर्ज की गई थी। 'नासा' के मैथ्यू जॉनसन की 2021 की शोध के अनुसार विश्व में 3 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र बांधों की झीलों के नीचे है जिसमें 10.1 टेराग्राम (10 अरब 10 लाख किलो) मीथेन हर वर्ष पैदा होती है।

हालांकि पुराने अनुमान के अनुसार यह मात्रा 70 टेराग्राम मानी गई है। फोरलेन सडकों के कारण होने वाली तोड़फफोड़ और बढ़ती सड़क कनेक्टिविटी के कारण होने वाले निर्माण कार्यों में पर्वतों की विशिष्ट तकनीक का अभाव है। खासकर ठेकेदारी प्रथा के चलते डंपिंग कार्य में भारी कोताही बरती जा रही है।

बांध प्रबन्धन में भी लापरवाही देखने में आई है। कहीं बाढ़ के समय बांध के गेट ही नहीं खुलते हैं और कहीं बाढ़–नियंत्रण के लिए बांध में समय रहते, बाढ़ के पानी को रोकने योग्य जगह ही (समय पर पानी छोड़कर) खाली नहीं की जाती। इससे बाढ़ का पानी रोका नहीं जा सकता और तत्काल अचानक छोड़ना पड़ता है, जिससे

सामान्य से ज्यादा बाढ़ आ जाती है।

इन सब लापरवाहियों के चलते हिमाचल प्रदेश का जीवन खतरे में घिरता जा रहा है, जिसका प्रभाव पर्यटन पर भी बुरा पड़ेगा। पर्यटन विकास के लिए ठंडा मौसम, सुंदर पर्वतीय वृक्ष, वनस्पतियों से भरी ढलानें और पर्याप्त बर्फ जरूरी तत्व हैं। बाकी आवास अदि सुविधाएँ तो बाद में आती हैं।

पर्यटन का बुनियादी आकर्षण ही समाप्त हो जाएगा तो पंचतारा सुविधाएँ भी पर्यटन को बचा नहीं पाएंगी। कुछ तथ्यपूर्ण मान्यताएं हैं जिनको मानकर ही पर्वत पर विशिष्ट विकास योजनाएं बनाई जा सकती हैं जो प्रकृति मित्र और टिकाऊ विकास लाने वाली हों।

हिमालय पूरे देश के लिए सदानीरा नदियां देने वाला और जलवायु निर्धारित करने वाला क्षेत्र है। वह नाजुक, अगम्य और हाशिए पर है। इसके वनों और हिमनदों की रक्षा करना देशहित का कार्य है। हिमाचल प्रदेश में पर्यटन जैसे पर्यावरण मित्र विकास को टिकाऊ बनाने के लिए सारे विकास मॉडल को पर्यावरण मित्र बनाना पड़ेगा।

तोड़फफोड़ वाले विकास के विकल्प तलाशने होंगे। वाहन प्रदूषण नियंत्रित करने के लिए सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था में सुधार करना होगा। इलेक्ट्रिक वाहन, हाइड्रोजन वाहन और 'रज्जू मार्गों' (रोप–वे) को मुख्यधारा परिवहन व्यवस्था का भाग बनाना होगा।

बड़ी जलविद्युत परियोजनाएं उपयुक्त नहीं हैं, उनके विकल्प ढूँढने होंगे। झीलों से मीथेन पैदा होती है। हिमालय में 'स्माल इस ब्यूटीफुल' के सिद्धांत पर विकास करना होगा।

हिमालय की राष्ट्रीय स्तर पर दी जाने वाली पर्यावरणीय सेवाओं को मान्यता देते हुए ये सेवाएं सतत देते रहने की शक्ति को बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर योजना निर्माण और क्रियान्वयन की जिम्मेदारी लेनी होगी।

इस दिशा में सोचकर योजना निर्माण होगा, तभी हिमाचल प्रदेश और हिमालयी राज्यों में पर्यावरण मित्र विकास का युग आरंभ हो सकेगा, हिमालय में रहने वाले लोगों का जीवन भी सुरक्षित हो सकेगा और देश के लिए जीवनदायी हवा, पानी और मिटटी के निर्माण और संरक्षण की हिमालयी व्यवस्थाएं बची रहेंगी। ***

**** चिपको संदेश ****

क्या हैं वनों के उपकार,
मिट्टी, पानी और बयार ।
मिट्टी, पानी और बयार,
ये जिंदा रहने के आधार ।।

दीप से दीप जले

माखनलाल चतुर्वेदी

सुलग-सुलग री जोत दीप से दीप मिलें
कर-कंकण बज उठे, भूमि पर प्राण फलें।
लक्ष्मी खेतों फली अटल वीराने में
लक्ष्मी बँट-बँट बढ़ती आने-जाने में
लक्ष्मी का आगमन अँधेरी रातों में
लक्ष्मी श्रम के साथ घात-प्रतिघातों में
लक्ष्मी सर्जन हुआ कमल के फूलों में
लक्ष्मी-पूजन सजे नवीन दुकूलों में।।
गिरि, वन, नद-सागर, भू-नर्तन तेरा नित्य विहार
सतत मानवी की अँगुलियों तेरा हो शृंगार
मानव की गति, मानव की धृति, मानव की कृति ढाल
सदा स्वेद-कण के मोती से चमके मेरा भाल
शकट चले जलयान चले गतिमान गगन के गान
तू मिहनत से झर-झर पड़ती, गढ़ती नित्य विहान।।
उषा महावर तुझे लगाती, संध्या शोभा वारे
रानी रजनी पल-पल दीपक से आरती उतारे,
सिर बोकर, सिर ऊँचा कर-कर, सिर हथेलियों लेकर
गान और बलिदान किए मानव-अर्चना सँजोकर
भवन-भवन तेरा मंदिर है स्वर है श्रम की वाणी
राज रही है कालरात्रि को उज्ज्वल कर कल्याणी।।
वह नवांत आ गए खेत से सूख गया है पानी
खेतों की बरसन कि गगन की बरसन किए पुरानी
सजा रहे हैं फुलझड़ियों से जादू करके खेल
आज हुआ श्रम-सीकर के घर हमसे उनसे मेल ।।

***

हरित हाइड्रोजन की ओर बढ़ते कदम

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन



भारतीय रेल्वे ने हाल ही में घोषणा की है कि हाइड्रोजन से चलने वाली एक ट्रेन ने सभी परीक्षण सफलतापूर्वक पूरे कर लिए हैं; यह ट्रेन चेन्नई स्थित इंटीग्रल कोच फैक्टरी में विकसित की गई है।

यह कदम राष्ट्रीय हरित हाइड्रोजन मिशन की प्रगति का एक अच्छा संकेत है। इस मिशन का लक्ष्य वर्ष 2030 तक देश में प्रति वर्ष कम से कम पचास लाख मीट्रिक टन हरित हाइड्रोजन का उत्पादन करना है, जो 2070 तक देश में शून्य कार्बन उत्सर्जन के लक्ष्य को हासिल करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित होगा।

यह ट्रेन जल्द ही हरियाणा में जींद और सोनीपत के बीच 89 किलोमीटर लंबे मार्ग दौड़ेगी। यह ट्रेन जींद में स्थित 1 मेगावाट के पॉलीमर इलेक्ट्रोलाइट मेम्ब्रेन इलेक्ट्रोलाइज़र द्वारा उत्पादित हाइड्रोजन पर निर्भर है, जहां प्रतिदिन 430 किलोग्राम हाइड्रोजन का उत्पादन होता है। ट्रेन के ईंधन टैंक में हाइड्रोजन भरी जाएगी, ईंधन सेल हाइड्रोजन को बिजली में बदलेगा जिससे ट्रेन की इलेक्ट्रिक मोटरें चलेंगी।

हाइड्रोजन बनाने का सिद्धांत काफी सरल है। विद्युत-अपघटक पानी के अणु को ऑक्सीजन, हाइड्रोजन आयन और इलेक्ट्रॉन में तोड़ता है। इस विद्युत-रासायनिक अभिक्रिया में ऋणात्मक इलेक्ट्रोड (एनोड) पर आणविक ऑक्सीजन मुक्त होती है, और मुक्त इलेक्ट्रॉन एक बाहरी परिपथ के माध्यम से धनात्मक इलेक्ट्रोड (कैथोड) तक पहुंचते हैं। कैथोड और एनोड के बीच छन्ने के रूप में एक बहुलक विद्युत अपघटक झिल्ली होती है,

जो केवल हाइड्रोजन आयन को कैथोड तक जाने देती है, जहां वे इलेक्ट्रॉनों के साथ मिलकर हाइड्रोजन अणु बनाते हैं। ये अणु गैस के रूप में ऊपर आते हैं।

फिर इस गैस को संपीड़ित करके संग्रहित कर लिया जाता है। छन्ने के तौर पर इस्तेमाल झिल्ली आम तौर पर एक फ्लोरोपॉलीमर, जैसे नैफिऑन (टेफ्लॉन से सम्बंधित), से बनी होती है। यह झिल्ली विद्युत की उम्दा कुचालक होती है, जो अपने में से इलेक्ट्रॉन्स को गुज़रने नहीं देती। उत्पादित हाइड्रोजन और ऑक्सीजन एकदम अलग-अलग जगह बनते हैं।

हाइड्रोजन से चलने वाले वाहनों में हाइड्रोजन ईंधन सेल में उपरोक्त अभिक्रिया विपरीत दिशा में होती है। हाइड्रोजन को एनोड तक लाया जाता है, जहां उत्प्रेरक की उपस्थिति में प्रत्येक हाइड्रोजन अणु टूटकर दो हाइड्रोजन आयन और दो इलेक्ट्रॉन बनाता है।

हाइड्रोजन आयन झिल्ली से होकर कैथोड तक जाते हैं जबकि इलेक्ट्रॉन इस झिल्ली को पार नहीं कर पाते और एक बाहरी परिपथ के ज़रिए कैथोड तक पहुंचते हैं। कैथोड पर हाइड्रोजन आयन का संपर्क हवा में मौजूद ऑक्सीजन और एनोड तक बाहरी परिपथ के माध्यम से लाए गए इलेक्ट्रॉनों से होता है। इस प्रकार पानी बनता है। बाहरी परिपथ से प्रवाहित इलेक्ट्रॉन विद्युत धारा पैदा करते हैं जो वाहन को शक्ति प्रदान करती है।

ईंधन सेल और विद्युत अपघटक में होने वाली रासायनिक अभिक्रियाओं में एक महत्वपूर्ण अंतर है। हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के बीच रासायनिक अभिक्रिया स्वतःस्फूर्त होती है। दूसरी ओर, पानी अपने आप इन दो तत्वों में नहीं टूटता। इस विद्युत-रासायनिक अभिक्रिया को ऊर्जा देने के लिए विद्युत आपूर्ति आवश्यक होती है।और, हरित हाइड्रोजन बनाने के लिए विद्युत-अपघटक को बिजली नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों से मिलनी चाहिए; जैसे, सौर या पवन ऊर्जा। राष्ट्रीय हरित हाइड्रोजन मिशन के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए नवीकरणीय ऊर्जा के नए स्रोतों की ज़रूरत होगी।

सूक्ष्मजीवों की इलेक्ट्रोलाइटिक कोशिकाओं में हाइड्रोजन का उत्पादन करने के रोमांचक प्रयास भी चल रहे हैं। इसमें विद्युत-रासायनिक रूप से सक्रिय सूक्ष्मजीव एनोड पर फलते-फूलते हैं और कृषि अवशेषों, अपशिष्ट जल जैसे कार्बनिक पदार्थों का ऑक्सीकरण करते हैं, और इस प्रक्रिया में उत्पन्न इलेक्ट्रॉनों को एनोड तक पहुंचाया जाता है।

उत्प्रेरक के तौर पर इसमें प्लैटिनम, इरिडियम जैसे महंगे पदार्थ चाहिए होते हैं। ***

पराली जलाने वालों को केंद्र का सख्त निर्देश



बदलते मौसम के साथ ही पंजाब, हरियाणा सहित दिल्ली–एनसीआर से सटे राज्यों में पराली जलने की छुटपुट घटनाएं सामने आने के बाद केंद्र ने उन सभी राज्यों को सतर्क किया है, जहां हर साल पराली जलाने के मामले बहुतायत में सामने आते हैं। इनमें पंजाब, हरियाणा, दिल्ली के साथ ही उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश व राजस्थान शामिल है। केंद्र ने इन राज्यों से पराली जलाने पर निगरानी बढ़ाने और ऐसा करने वालों के खिलाफ कड़े कदम उठाने के निर्देश दिए हैं।

वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने – राज्यों को यह निर्देश तब दिया है, जब हर साल इन राज्यों में पराली जलाए जाने से दिल्ली–एनसीआर में अचानक प्रदूषण का स्तर बढ़ जाता है। जिसकी हिस्सेदारी एक समय में कुल प्रदूषण में करीब तीस प्रतिशत तक की हो जाती है। दिल्ली में बाकी 70 प्रतिशत प्रदूषण वाहनों से निकलने वाले धुएं, निर्माण कार्यों से उठने वाली धूल आदि से होता है। पराली जलाने के सर्वाधिक मामले इन्हीं राज्यों में आए थे।

मौसम में बदलाव से यह दिल्ली–एनसीआर में गहरे धुंध के रूप में साफ तौर पर दिखाई देने लगता है। मंत्रालय की चिंता इस बात को लेकर है कि अचानक से पराली का धुंआ आने से दिल्ली–एनसीआर में जो स्थिति निर्मित हो जाती है, वह न होने पाए।

पिछले साल मंत्रालय का इन राज्यों पर फोकस पराली जलाने के सर्वाधिक मामले इन्हीं राज्यों में सामने आए थे। पिछले साल 15 सितंबर से 30 नवंबर तक पंजाब में पराली जाने की 10900 मामले सामने आए थे।

जबकि हरियाणा में 1406, मध्य प्रदेश में 16360, उत्तर प्रदेश में 6142, दिल्ली में 12 और राजस्थान में 2713 पराली जलाने के मामले सामने आए थे। ***

डाक पंजीयन क्रं. RTM DN 122 MP 2024-26

पर्यावरण डाइजेस्ट अक्टूबर 2025 RNI पंजीयन क्रं. 47679/87

पर्यावरण संस्कृति की ओर बढ़ते कदम....